नारी विमर्श

(प्राचीन काल से आधुनिक काल तक)

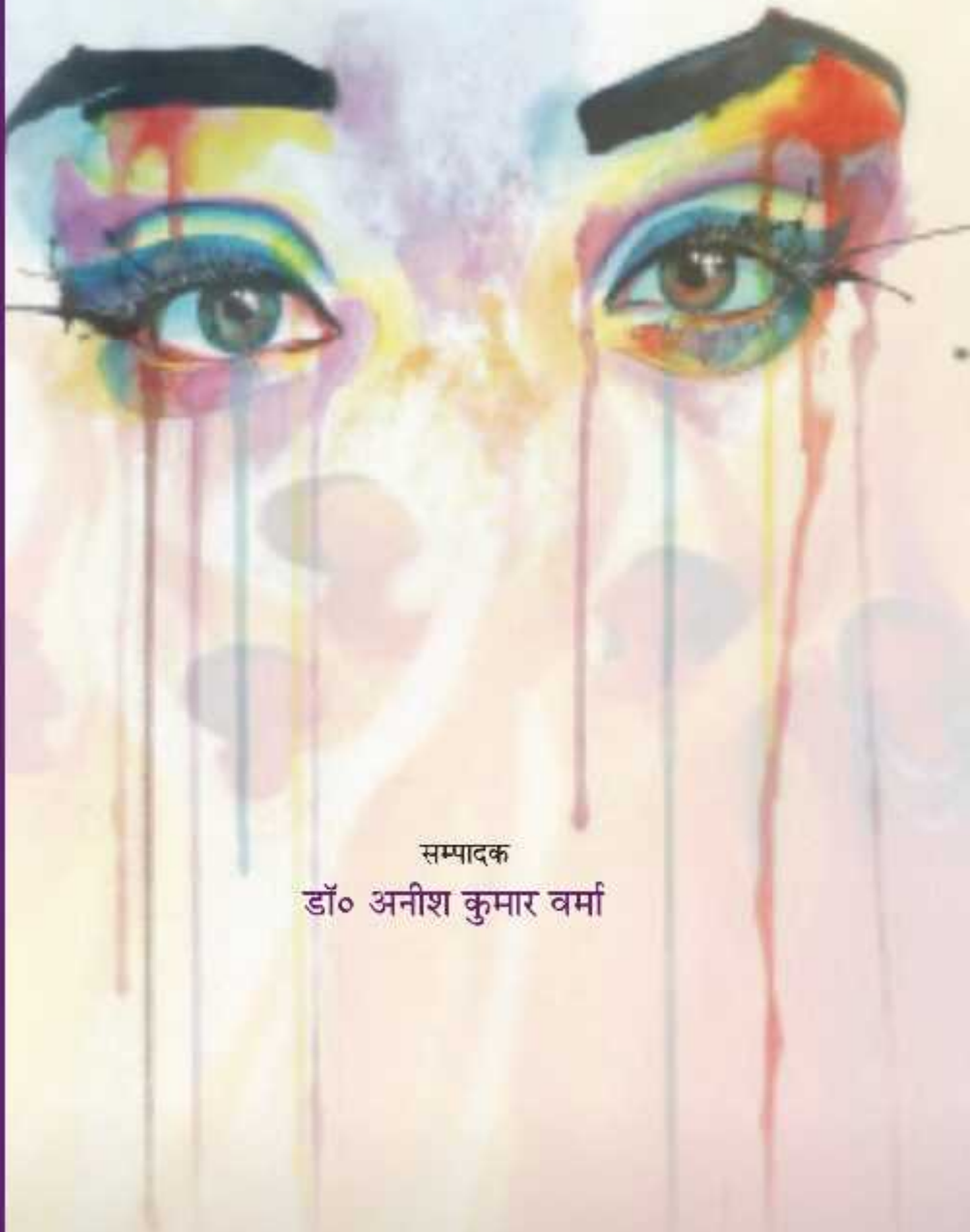

सम्पादक

डॉ० अनीश कुमार वर्मा

नारी विमर्श

(प्राचीन काल से आधुनिक काल तक)

सम्पादक

डॉ० अनीश कुमार वर्मा

प्रकाशक

साउथ एशिया रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट इंस्टीट्यूट

दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–२२१००५, उ०प्र० (भारत)

प्रकाशक
साउथ एशिया रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट इंस्टीट्यूट
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–221005, उ०प्र० (भारत)
मो. : 9453025847

© डॉ० अनीश कुमार वर्मा

प्रथम संस्करण, जनवरी–२०१६

ISBN 978-81-932391-2-4

मूल्य : तीन सौ पचास रुपये मात्र

मुद्रक :
राज ग्राफिक्स
बी०एच०यू० रोड, लंका, वाराणसी – 221005, उ०प्र० (भारत)
सम्पर्क सूत्र : 09415842611

अन्नपूर्णा की साक्षात् प्रतिमूर्ति
बुआ जी श्रीमती कमला देवी
के दिव्य चरणों में सभक्ति समर्पित,
जिनकी अहर्निश छाया एवं आशीर्वाद ही मेरा
सम्बल है।

- डॉ० अनीश कुमार वर्मा

विश्व के प्रमुख धर्म

Hkfedk

महिलाएँ अपनी संगठित ताकत से स्त्रीत्व की चारदिवारी व बेड़ियों को तोड़ती हुई प्रतिरोध की व्यापक गोलबंदी कर रही हैं। पूर्ण मुक्ति की आकाँक्षा से निकल रहे संघर्ष ने उन्हें इस समझ व दृष्टि से लैस कर दिया है कि उन पर हो रहे उत्पीड़न व हिंसा के लिए वे स्वयं जिम्मेदार नहीं हैं जैसा कि उन्हें समझाने की कोशिश की जाती है। उन्होंने सही सवालों को पहचान कर जान लिया है कि इसके केन्द्र में जनविरोध सामाजिक व्यवस्था है।

आज की स्त्री घर–बाहर लाँछन लगाने, बदनाम करने के डर व अपराधबोध से मुक्त हो पुरुषों की रचित मर्दवादी दुनियाँ को नकार रही है, जहाँ पुरुष की परिभाषा भोक्ता, ज्ञाता, नियंता, निर्माता और स्त्री की भोग्या, कुलटा व अनुचरी के रुप में की जाती है। सत्ता व सम्पत्ति में भागीदारी व हिस्सेदारी की माँग के लिए उनकी चेतना का राजनीतिकीकरण और संगठित आन्दोलन ही उनकी वैचारिक ताकत व सामाजिक पहलकदमी का मूल स्त्रोत है जिसको और अधिक तीखा, सक्रिय, धारदार व ऊर्जावान बनाने व रचनात्मक दिशा देने में प्रगतिशील महिला संगठनों की सराहनीय भूमिका है। अब उनकी वैचारिक दुनियाँ के मुदद् व विषय–वस्तु बदल रहे हैं। परिवार व पति की दुनियाँ से बाहर निकलकर बेहतर जीवन, दुनियाँ व भविष्य के निर्माण के आधारों की तलाश कर रही हैं। यही समझ उसकी सम्पूर्ण व असली स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा का प्रारम्भिक सोपान है। इससे प्रस्फुटित चेतना से ही वह यथास्थितिवाद व प्रतिक्रियावादी शक्तियों को शिकस्त दे रही है और स्वतंत्रता की यांत्रिक समझ से मुक्त हो वास्तविक आर्थिक–राजनीतिकी से विमर्श कर रही है। यही दृष्टि उसकी अविचलित प्रतिबद्धता की ताकत भी है और इंसानी जीवन की प्राप्ति का माध्यम भी है।

उपरोक्त सरोकारों को दृष्टिगत करते हुए इस पुस्तक के उद्देश्य को उसके निबंधों में आसानी से देखा जा सकता है। जो नारी विमर्श (प्राचीन काल से आधुनिक काल तक) के विविध आयामों को रेखांकित करता है। नारी विमर्श : समस्या एवं परिप्रेक्ष्य पर केन्द्रित 'रिसर्च डिस्कोर्स' विशेषांक, 2013 के कुछेक

चुने हुए लेखों को संशोधित एवं परिवर्द्धित करके लिया गया है और कुछ विषय सामग्री को अप्रासंगिकता के कारण हटाया गया है। हम प्रकाशक के सार्थक प्रयास से पुस्तक रुप में प्रकाशन के लिए एवं 'रिसर्च डिस्कोर्स' के लेखकों और सहयोगियों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करते है।

अन्त में, सभी लेखकों एवं अन्य विद्वतजनों के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हुए उनसे सुझाव, सहयोग एवं आशीष की कामना करते हैं।

सम्पादक

fo"k;&lwph

- L=h foe'k
  ¼ikphu dky ls vk/kqfud dky rd½ 1&7
  डॉ0 मुकेश चन्द्र श्रीवास्तव
- Nk;koknh L=h&foe'k 8&15
  डॉ0 प्रदीप राय
- iwoZ oSfnd dky esa ukjh ,oa /keZ 16&19
  डॉ० अजय कुमार
- ;'kiky dh *fn0;k* vkSj L=h foe'k 20&25
  डॉ0 प्रकाश चन्द्र पटेल
- MkW- vEcsMdj vkSj nfyr efgyk 26&29
  अर्पिता तिवारी
- ckck lkgc vkSj nfyr efgyk vkUnksyu
  1930 ls 1934 rd ds dky ds lUnHkZ esa 30&33
  अतुल गुप्ता व अंजली गढ़वाल
- fgUnh lkfgR; esa ukjhoknh foe'k 34&39
  डॉ० सुधा त्रिपाठी
- Ukkjh foe'k vkSj fir`lRrkRed lekt 40&44
  सुधीर त्रिपाठी
- ckfydkvksa dh f'k{kk % ,d v/;;u 45&48
  डॉ0 सुशील कुमार गुप्ता
- MkW- vEcsMdj vkSj nfyr efgykvksa dk la?k"kZ 49&52
  डॉ0 अनुरागिनी रावत
- fgUnh nfyr dkO; esa ukjh dh lkekftd fLFkfr 53&59
  डॉ0 राजमुनि
- iq:"k lÙkk ds f'kdats esa rM+Qrh nfyr ukjh
  ¼^f'kdatss dk nnZ^ ds fo'ks"k lUnHkZ esa½ 60&70
  डॉ0 रमेश चन्द

- og g&vktknh 71&76
  डॉ0 रामाश्रय सिंह
- ukjh ds mRFkku es ckS) /keZ n'ku dh Hkwfedk 77&82
  डॉ0 सुभाष चन्द्रा
- Ekfgyk l'kDrhdj.k vkSj Hkkjrh; dkuwu 83&86
  रमन प्रकाश
- efgykvksa dk l'kDr cukus esa f'k{kk dh Hkwfedk 87&91
  डॉ0 सत्यनाम
- Hkkjr dh efgykvksa dk la?k"kZ 92&94
  डॉ0 सुमन सिंह
- izkphu Hkkjrh; lkfgR; dh lkaLdfrd Hkwfedk esa ukjh 95&99
  डॉ0 श्रद्धा श्रीवास्तव
- vktknh ds ckn Hkh la?k"kZjr L=h 100&104
  रत्नेश कुमार त्रिपाठी
- Hkkjrh; ukjh vkSj xka/kh th 105&109
  डॉ0 माधुरी गुप्ता
- Hkkjr esa efgykvksa dk l'kfDrdj.k % ,d foospuk 110&113
  डॉ0 भारती पाण्डेय
- fir`lÙkkRed lekt esa ukjh % euqLe`fr ds fo'ks"k lUnHkZ esa 114&116
  डॉ0 आशुतोष श्रीवास्तव
- efgykvksa dh fLFkfr ,oa vf/kdkj % ,d uohu fo'ys"k.k 117&120
  डॉ0 महेन्द्र कुमार उमर
- efgyk l'kfDrdj.k % miyfC/k;ka ,oa pqukSfr;ka 121&123
  डॉ0 अभय प्रताप सिंह

- Hkkjrh; ukjh dh n'kk ,oa fn'kk esa ifjorZu 124&128
  डॉ0 सन्तोष कुमार त्रिपाठी
- efgyk l'kfDrdj.k % ,d v/;;u 129&133
  डॉ0 सन्दीप कुमार मिश्र
- efgyk l'kfDrdj.k % ,d v/;;u 134&138
  डॉ0 पुरूषोत्तम लाल विजय
- ekuokf/kdkj vkj Ukkjh % ,d v/;;u 139&141
  डॉ. विजय कुमार चतुर्वेदी
- efgyk l'kDrhdj.k dk lp 142&144
  डॉ0 जे0पी0 दूबे
- Hkkjr esa efgykvksa ds ekuokf/kdkj 145&148
  डॉ0 सन्दीप कुमार मिश्र व डॉ0 भारती पाण्डेय
- efgyk m|eh leL;k ,oa fodkl % ,d voyksdu 149&153
  डॉ0 सुनिल कुमार
- EkgkRek xk/kh dk fL=;ksa ds izfr fopkj 154&158
  डॉ. अनीश कुमार वर्मा

L=h foe'k

¼ikphu dky l vk/kfud dky rd½

Mk0 e|d'k pUn JhokLro*

; = uk;Lr| itUr jeUr r= nork

अर्थात् जहाँ पर नारी की पूजा होती है, वहीं पर ईश्वर का निवास होता है। मनु स्मृति में उद्घोषित यह वाक्य स्त्रियों के आदर एवं सम्मान की बात करता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान सदैव आदरणीय रहा है। किसी भी सभ्य समाज की कल्पना बिना स्त्रियों के सम्मान की बात करना व्यर्थ है। वे पुरुषों के बराबर की हकदार थी। विवाह, शिक्षा एवं धन में उनका बराबर का हक था। मध्यकाल में स्त्रियों के आदर एवं सम्मान में गिरावट की बात देखने को मिलती है, किन्तु आधुनिक भारत में उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि वे बराबरी की हकदार है। इसकी चरमपरिणति आज त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के अर्न्तगत देखी जा सकती है। संसद में भी 33 प्रतिशत महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण की बात चल रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में नारियों की विभिन्न युगों में उत्थान एवं पतन/गिरावट की चर्चा की गई है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हिन्दू समाज में उनका सम्मान एवं आदर मर्यादायुक्त था। परिवार एवं समुदाय में वे कन्या, पत्नी, माता के रुप में समाज में आदृत थी। समाज का उनके प्रति निष्ठा एवं आदर का स्वभाव था। भारतीय धर्मशास्त्र में नारी सर्वशक्तिमान समझी गई तथा वे शील, विद्या, ममता, यश एवं सम्पत्ति की प्रतीक समझी गई। गृह की सम्राज्ञी के रुप में उसे प्रतिष्ठित किया गया। परिवार को सभी व्यक्तियों के उसके निर्देशन में रहने को कहा गया।[1] यहां

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, गायत्री विद्यापीठ पी0जी0 कालेज, रिसिया, बहराइच (उ0प्र0)

तक कि उसका स्थान इतना बढ़ा दिया गया कि पुरुष उसके बिना अधूरा कहा गया।[2] पुरुष शब्द के निर्मित स्त्री, संतान एवं व्यक्ति की समष्टि से मानी गई। शास्त्रकारों का कथन है कि नारी कोई वस्तु नही है, स्त्री, स्नेह तथा संतान ये तीनों मिलाकर पुरुष को पूर्ण बनाते हैं।[3] इस प्रकार स्त्री पुरुष की शरीर्राद्ध एवं अर्द्धांगिनी मानी गई तथा 'श्री' एवं 'लक्ष्मी' के रुप में वह मनुष्य के सुख दुःख एवं समृद्धि से दीप्ति एवं कुंजित करने वाली कही गई।[4] उसका आगमन पुरुष के लिए शुभ का प्रतीक था। जब तक पुरुष विवाह करके भार्या नही प्राप्त कर लेता था तब तक वह अपूर्ण था जिस प्रकार आधा शरीर कुछ नही ठीक उसी प्रकार प्रजापति भी पूरा शरीर होने पर ही सम्भव था तथा पूरा शरीर अर्थात् शरीर की पूर्णतः विवाहिता पत्नी से ही सम्भव था।

स्त्रियों की स्थिति में तद्नुरुप परिवर्तन होता रहा है। उसकी स्थिति वैदिक युग से लेकर पूर्व मध्यकाल के बीच अनेक उतार–चढ़ाव के बाद परिवर्तन होते रहे हैं। उनके अधिकारों में किसी युग में बढ़ोतरी तो किसी युग में कमी की चर्चा मिलती है। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों के समाज में श्रेयष्कर स्थान नही मिला। कुछ पाश्चात्य विचारकों ने जैविकीय आधार पर स्त्रियों को पुरुषों से हीन बताया। उनके चरित्र में स्थिरता का दोष मढ़ा गया।[5] साथ ही यह मत व्यक्त किया गया कि उनमें न्याय की भावना अत्यल्प होती है और उनके व्यक्तित्व में ईर्ष्या की मात्रा अधिकाधिक है।[6] किन्तु पाश्चात्य विचारकों की तरह भारतीय समाज में इस प्रकार की कोई भ्रान्ति नही। भारतीय विचारकों ने सदैव आदर व्यक्त किया है तथा इन्हें 'देवी' एवं 'श्री' का प्रतीक माना है।

वैदिक काल में सभा एवं समिति की चर्चा मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि समिति में स्त्रियों का प्रवेश नही अपितु सभा में स्त्रियों का प्रवेश का वर्णन मिलता है। बहुओं के लिए यह प्रवेश की भी बात कही गई है।

हिन्दू जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे आदृत थी। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व एवं सामाजिक विकास में उसका महत्वपूर्ण योगदान है। वह स्वतंत्रतापूर्वक शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। पुरुषों की तुलना में वह किसी प्रकार निम्न और अनुन्नत नही थी। नववधु गृह की साम्राज्ञी होती थी।[7] वह पुरुषों के साथ

कन्धा मिलाकर कार्य करती थी। जिस प्रकार किसी रथ के संचालन के लिए दो बैलों की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार स्त्री एवं पुरुष यज्ञ रुपी रथ के दो बैल होते थे।[8] अतः यज्ञ अपनी उपस्थिति से 'पत्नी' रुप को चरितार्थ करती थी। उस युग में गृह की परिचारिका के रुप में गृहणी रुप साकार हो गया। गृह एवं पत्नी दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना जाने लगा। बिना पत्नी के गृह की कल्पना व्यर्थ मानी गई। वैदिक युग में शिक्षा के द्वार स्त्रियों के लिए भी खुला था। शिक्षित कन्या के प्राप्ति के लिए वर सदैव उद्यत् रहते थे। शिक्षा के लिए उनका भी उपनयन संस्कार सम्पादित होता था।[9] शिक्षित वर कन्या विवाह के लिए अत्यधिक अच्छे समझे जाते थे।[10] ऐसी भी स्त्रियाँ थी जो एकनिष्ठता के साथ केवल विद्याध्ययन ही करती थी 'ब्रह्मवादिनी' कहलाती थी।

सूत्रों एवं स्मृतियों के काल में आकर स्त्रियों की स्थिति और भी निम्न हो गई जिससे वे निःसहाय, परतन्त्र एवं निर्बल बन गई। धर्मशास्त्रकारों ने उनकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं वैयक्तिक सभी स्थितियों पर रोक लगा दी गई। कन्या, पत्नी एवं माता जैसी स्थितियों में भी उनके संरक्षण की बात कही गई है।[11] निश्चय ही यह प्रतिबन्ध उनकी सुरक्षा एवं पवित्रता को ध्यान में रखकर किया गया था।

हर्षचरित में वर्णित है कन्या वर से नेय और उसकी धरोहर है जिसको अक्षुण्ण प्रत्यर्पित करना पड़ता है। यह स्मृति उसके उन्नयन काल में पिता के मन पर संताप एवं बोझ की तरह रहती आयी है।[12] अतः कन्या का यौवन काल पिता के लिए समस्या थी। कन्या एवं पुत्र के आगमन में पुत्र का जन्म सोल्लासपूर्ण माना गया।

गुप्त काल का कन्या शक्ति के रुप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी उसे 'गौरी, भवानी' आदि की संज्ञा प्रदान की गई किन्तु उसके शक्ति रुप को समझकर भी पिता उसके प्रति अपने दायित्व भाव से बोझिल एवं संतृप्त होता गया। इस भार में धार्मिक अभिव्यक्ति ने भी कोई महत्वपूर्ण सहयोग नही प्रदान किया। मातृ–गर्भ की आई राज्यश्री का वर्णन बाणभट्ट ने कुछ इस प्रकार किया है– ''देवी यथोमति ने देवी राज्यश्री को उसी प्रकार गर्भ

में धारण किया जिस प्रकार नारायण मूर्ति ने वसुधा को..... जिस प्रकार मैंना ने सर्वजीवधारियों से अभ्यर्थित गौरी को उत्पन्न किया था उसी प्रकार यशोमति ने दुहिता राज्यश्री को।''[13]

पूर्व मध्यकाल तक आकर उस पर कठोर नियंत्रण एवं पुरुषों का अधिकार समझा गया। धर्म एवं समाज की रक्षा के नाम पर अनेक ऐसी व्यवस्थाओं का नियमन हुआ जिनसे स्त्रियों की दशा निरन्तर दयनीय होती गई। इस प्रकार अनेक बन्धनों के घेरे में उनका व्यक्तित्व सिमटकर रह गया और फलतः उनका विकास अवरुद्ध हो गया।

मध्यकाल में स्त्रियों के मान सम्मान में गिरावट आई। क्योंकि यह युग आक्रान्ताओं का युग था। इन्ही आक्रान्ताओं के डर की वजह से इस काल में बाल विवाह को बढ़ावा मिला। जिससे उनका व्यक्तित्व दब सा गया। समाज में कई बेमल विवाह देखने को मिले उन्हें चाहे जबरन विवाह कहें या तत्कालीन राजनीति की मांग अर्थात सभी अब देवी एवं श्री नही रही वह राजनीति की विसात पर शतरंज की गोटी मात्र थी। रजिया को शासन अमीरों ने इसलिए नही करने दिया, क्योंकि वह स्त्री थी।

आधुनिक भारत में भारतीय नारी का चित्र अपने प्राचीन चित्र से प्रतिकूल ही उभर कर आया है, वे अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति अधिक चेतना शील है बदलते हुए समाज एवं कानून ने उन्हें आत्मनिर्भरता रुपी वस्त्र से आदृत् किया है। जनसंख्या के एक विद्वान जो कि विश्लेषण भी है उन्होंने अपने अध्ययन में बताया है कि पिछले 10 वर्षों में कामकाजी महिलाओं की संख्या में 43.3 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। दृढ़ संकल्पना, एकाग्रता, आत्मचिन्तन कुछ कर गुजरने की ललक एवं शिखर पर पहुंचने की निश्छल मन एवं आन्तरिक मृदुता नारी सफलता के आधार स्तम्भ कहे जा सकते हैं।

संवैधानिक दृष्टिकोंण से देखे तो पता चलता है कि 1961 के दहेज निषेध अधिनियम में दो बार संशोधन किये जा चुके है। कामकाजी महिलाओं के लिए प्रसूति लाभ अधिनियम सन् 1961 और समाज कार्य के लिए समान मजदूरी अधिनियम 1976 में संरक्षात्मक तथा शोषक निवारक अधिनियम लागू किये गये। 1975 में ''अर्न्तराष्ट्रीय महिला वर्ष'' घोषित हुआ जिसमें

महिलाओं के लिए समान व्यवहार एवं अधिकार के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास किये गये जिसमें कई प्रकार के विशिष्ट कार्यक्रम निर्धारित किये गये।

माननीय उच्चतम् न्यायालय के दिशा निर्देशों (13 अगस्त 1977) के अनुरुप कार्यस्थल पर उनके साथ दुर्व्यवहार को व्यापक रुप से परिभाषित किया गया है। 1990 के एक्ट के अधीन ''राष्ट्रीय महिला आयोग'' की स्थापना की गई। जिसका उद्देश्य महिलाओं के विकास कार्यों और उन पर हो रहे अत्याचारों एवं शोषण की निवारण करना है। 1996 में ''प्रसव पूर्व नैदानिक तकनीक नियमन एवं दुरुपयोग एवं बचाव अधिनियम'' लागू कर कन्या भ्रूण हत्या को आपराधिक दण्ड का प्रावधान किया गया है।

पिछले दशकों में त्रिस्तरीय पंचायत चुनाव में 33 प्रतिशत महिलाओं की उपस्थिति इस बात का प्रतीक है कि उनकी स्थिति पहले से कहीं अधिक बेहतर है। सन् 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष के रुप में 20 मार्च 2001 को सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए नीति पारित की गई। जिसका उद्देश्य महिलाओं के साथ उसी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करना उनके अधिकारों में वृद्धि करना उन्हें सम्मान के दृष्टिकोण से देखना एवं उनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भागीदारी सुनिश्चित करना आदि शामिल है। भारतीय संविधान में ऐसे भयमुक्त समाज की कल्पना की गई है जिसमें महिलाओं को समान अधिकार एवं समाज के साथ बढ़ने का अवसर प्रदान करना है जैसा कि संविधान की उद्देशिका में निहित है कि ''राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्म, स्थान या इनमें से किसी भी आधार पर कोई विभेद नही करेगा।'' नारी उत्थान के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। जिसका उद्देश्य महिलाओं को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना है।

आज समाज जब तेजी से बदल रहा है, भूमण्डलीकरण के इस युग में यह आवश्यक हो गया है कि हम नारियों का सम्मान करें ऐसे प्रयासों के परिणामस्वरुप निःसन्देह वे आगे बढ़ रही है। हमारी सरकारें भी इस दिशा में प्रयत्नशील है, बस जरुरत है, सोच बदलने की। कुछ एक घटनाएं हो

जाने से समाज नारियों को कमजोर नही कर सकता। सभ्य समाज की यह जिम्मेदारी है, कि वह नारी का सम्मान करें उन्हें मुख्यधारा में जोड़ने का प्रयास करे क्योंकि वही समाज उन्नति कर सकता है जिसमें नर–नारी बराबरी के हकदार हों। नारी की सार्थकता t;'kdj iz lkn के शब्दों में:–

> ''जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं की मूल''।
> ईश वह रहस्य वरदान, कभी मत जाओ भूल।।''

lUnHkZ %&

1. अथर्ववेद 14.14
2. शतपथ ब्राह्मण 5.2.1.10 मनुस्मृति 9.45
   ^,rkoku iq#"kks ;TTtk;kRek iztsfr gA
   foizk% izkgLrFkk% prr|ks Hkrk Ik Le`rkxukAA^
3. महाभारत आदि पर्व 74.40, वृहस्पति0 25.11 अपरार्क 7.40
4. वृहत् संहिता 74.5, 5, 11, 15–16, मनु0 9.26
   ^iztukFk egkHkkxk% iztkgk&xgnhIr;%A
   fLeFk% fJ;'p xg"kq u fo'k"kks?fLr d'puAA^
   वेदव्यास स्मृति 2.14
   ^;koUu foUnrs tk;ka rkon)ks Hkors iqekuA
   uk)a iztk;rs loZ iqtkesrR;fi JqfrAA^
5. रोबैक, द साइकालॉजी ऑफ करैक्टर पृ0 600–11
6. फ्रायड, इण्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स आन साइको–ऐनालिसिस पृ0 134
7. ऋग्वेद 10.85.46 साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु।
8. वहीं 1.72.5, 5.32
9. वृहदारण्यक उपनिषद 6.4.17
   vFk; bPNn nqfgrk esa if.Mrk tk;sr loekZnfj;k
   fnfr frykSnua ikpf;Rok lfiZ"ear'uh;rkeh'ojh tuferoSA
10. अथर्ववेद 11.5.18, शुक्ल यजुर्वेद 8.1
11. मनु 09.3
    firk j{kfr dkSekjs Hkrkz j{kfr ;kSousA
    j{kfUr LFkfojs iq=k u Leh LokrU;egZfrAA
    वेदव्यास स्मृति 2.54
    lokoLFkkl q ukjh.kka u ;qDr L;knj{k.keA

rnokuØekr~ dk;Z fir`Hkkr` lqrkfnfHk%AA

12. हर्षचरित 4.(231) 5,

^^m}kx egkorh ikr;fr i;k/kjkUudky%A

flfjfno rVeuqo"kZ foo}Hkkuk lqrk fir`jeAA^^

वही. 4 (234)

;kSoukjEHk ,o p dkU;dk uke b/kuh Hkofr fir`j% lUrkikuyL;A

13) वही. 4 (167–76)

nsoh ;'kkorh xHkZ.k vk/kUr

Ukjk;.kefrZ fjo olq/kk nsoh jkT;fJ;eA

lokHkkokH;fFkrk xkjhfeo euk ikl`rorh nqfgrjeAA

****

Nk;kokn h L=h&foe'k

Mk- inhi jk;*

स्त्री को शक्ति का महान भंडार और परिवार की नींव माना गया है। चूंकि परिवार समुदाय की नींव है और समुदाय राष्ट्र की, अतएव स्त्री ही समाज व राष्ट्र की नौका की वास्तविक कर्णधार है।[1] छायावाद की मूल शक्ति और पहचान स्त्री थी। इसलिए छायावादी स्त्री–विमर्श ने स्त्री को देखने की एक नयी दृष्टि दी जो पूर्ववर्तिनी काव्य दृष्टियों से भिन्न है। 'विमर्श' मूलतः गहन–गंभीर विचार चिंतन का पर्याय है। नामवर सिंह के मत में "विमर्श का मतलब किसी एक वस्तु के बारे में लोगों के बातचीत करने के तरीके या सोचने की पद्धति से है। ये तरीके मिलजुल कर लोगों की सामान्य धारणा को बनाते हैं।"[2] स्त्री–विमर्श से अभिप्राय स्त्री के बारे में सोच–विचार, समाज में उसकी स्थिति क्या है, कैसी हो, उसके बारे में सलाह–मशविरा करना ही स्त्री–विमर्श है। स्त्री–विमर्श आज समाज सामाजिक एव साहित्य का एक ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है।[3] स्त्री–विमर्श वस्तुतः स्त्री को व्यक्ति के अथवा मानव के रूप में देखने की अपेक्षा करता है जिसमें न लिंग भेद के लिए स्थान है और न वर्चस्व के लिए। समानता, आत्मनिर्भरता, स्वतंत्रता, वर्चस्व और बंधनों से मुक्ति ही स्त्री–विमर्श के आधार स्तम्भ कहे जा सकते हैं। वस्तुतः स्त्री–विमर्श का उदय लिंगभेद के आधार पर निर्मित विषमता को तिलांजलि देने और मानवतापूर्ण व्यवहार को आदरांजलि देने के प्रयोजन से हुआ है।[4] नामवर सिंह के मत में विमर्श का मतलब किसी एक वस्तु के बारे में लोगों के बातचीत करने के तरीके या सोचने की पद्धति से है। ये तरीके मिलजुल कर लोगों की सामान्य धारणा को बनाता है। विमर्श हमें वस्तुस्थिति को स्वीकार करने की बजाए वैकल्पिक रास्तों की खोज करने को प्रेरित करता है। स्त्री–विमर्श, स्त्री–जीवन का विमर्श है। जिसमें पुरुष–प्रधान समाज में उसकी हैसियत,

*ए/12, वासुदेव नगर कालोनी, पहड़िया, वाराणसी

अधिकार, अस्मिता तथा अस्तित्व को लेकर चिंतन मिलता है। स्त्री–विमर्श ने हज़ारों वर्षों से चले आ रहे पितृसत्तात्मक विमर्श, सिद्धान्तों, प्रतिमानों को चुनौती दे दी है, क्योंकि वे सिद्धान्त पुरुष द्वारा निर्मित हैं। उनसे स्त्री पाठ को नहीं समझा जा सकता। स्त्री–विमर्श ने ही पितृसत्तात्मक सिद्धान्तों में निहित उन प्रचंड अन्तर्विरोधों, विरोधाभासों को सामने रखा है जो स्त्री विरोधी हैं। स्त्री–विमर्श स्त्री को 'मानवी' रूप में प्रस्तुत कर उसके समस्त अधिकारों को प्राप्त करा देने की पहल करता है। स्त्री–जीवन की निजता का बोध यहाँ प्रमुख रूप में उपस्थित है। स्त्री मुक्ति सही मायने में तभी होगी जब उसे सामाजिक अधिकार प्राप्त होगा। नवजागरण और छायावाद युगीन स्त्री–मुक्ति आंदोलन के कारण स्त्री–समाज को बदलने के प्रयास में कदम उठा रही है। इसमें स्त्री का समाज में स्वतंत्र रूप से विचरण करना तथा अपनी अलग अस्मिता को बनाए रखने के साथ–साथ राजनैतिक, कानूनी, पारिवारिक तथा आर्थिक इन समस्त अधिकारों को प्राप्त कर लेने की संकल्पना निहित है। नवजागरण और छायावाद के पूर्व स्त्री–विमर्श को व्यवहार तथा चरित्र के धरातल पर स्थूल रूप में ही ग्रहण किया गया था।

स्त्री–विमर्श एक व्यापक संकल्पना है जो नारीवाद के एक अंग के रूप में उभर कर आई है। विमर्श हमें वस्तुस्थिति को स्वीकार करने के बजाए वैकल्पिक रास्तों की खोज करने को प्रेरित करता है। विचारधारा का जन्म इसी खोज के भीतर से होता है, जैसे स्त्री–विमर्श अथवा दलित–विमर्श। यह विमर्श जब स्त्री के साथ जुड़ता है तब स्त्री का स्त्री होने के नाते सहे हुए आघातों से मुक्ति तथा मनुष्य के रूप में अपनी पहचान बनाने की जद्दोजहद की प्रक्रिया की ओर संकेत करता है। आज स्त्री–विमर्श को हर क्षेत्र में, हर कोण से देखा जा रहा है। सृजन में, सत्ता में अथवा दर्शन में स्त्री–विमर्श की पहचान अलग–अलग प्रकार से है। रोजाल्डो एवं लेम्पीयरे[6] के अनुसार हर समाज में महिला को कुछ प्रमुख आर्थिक एवं राजनीतिक क्रिया–कलापों से पृथक रखा गया है तथा पुत्री, पत्नी और माता के रूप में उन्हें पुरुष की अपेक्षा कम शक्ति और विशेषाधिकार प्राप्त हैं। यह कहना उचित है कि सभी समकालीन समाज पुरुष प्रधान समाज है। महिला की

पराधीनता की मात्रा एवं उसकी अभिव्यक्ति प्रत्येक समाज में भिन्न–भिन्न रूप से हुई है।[6]

अतएव स्त्री–विमर्श वास्तव में स्त्री की अभिव्यक्ति से जुड़ा विमर्श है। समाज की जो आधी आबादी सभ्यता के आरम्भ से लेकर तथाकथित ज्ञान समाज में समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय तथा अभिव्यक्ति के लिए जबरन चुप करा दी गई, उसी स्त्री की अभिव्यक्ति का प्रकट होना ही स्त्री–विमर्श है। सुप्रसिद्ध नारीवादी चिंतक सीमोन द बोउवार मानती है कि स्त्री की स्थिति अधीनस्थता की है। समाज में नर या मादा पैदा होते है। स्त्री जन्म से नहीं होती अपितु अपनी इस अधीनस्थ की स्थिति के कारण सामाजिक मानदण्डों के अध्यारोपण से मादा स्त्री बन जाती है। मादा की स्त्री परिणति के केन्द्र में सीमोन द बोउवार पुरूषवादी समाज को मानती है। स्त्री केंद्रित सभी महत्वपूर्ण सवालों की बहस को आगे बढ़ाते हुई सीमोन कहती है, ''बचपन से लेकर जीवनपर्यन्त पुरुष और उसके समर्पण–भाव की प्रशंसा करते रहते है। स्वतंत्रता सबको डराती है। स्त्री भी इसका अपवाद नहीं है और गुलामी की प्रशस्त हो तो क्या कहना? समर्पण के नाम पर मिलने वाली सुविधा का प्रलोभन किसी को भी हो जायेगा।[7]

छायावादी कवियों की स्त्री–विमर्श का मूल उत्स उनकी व्यक्तिवादी प्रवृत्ति में था। वह आत्मनुभूति को महत्व देते थे। व्यक्तिवाद से स्वच्छन्दतावादी वृत्ति को प्रश्रय मिलता है। अतः छायावादी कवि की स्त्री उनकी व्यक्तिवादिता, आत्मानुभूति और स्वच्छंदतावादी वृत्ति से सृजित हुई थी। स्वच्छंदतावादी कवि का अहं सदा सचेत रहता था। वह स्वानुभूति को कल्पना और स्वकीय भावना के रंग में रंग कर अपनी भावाभिव्यक्ति करता था। उसने स्त्री को अपने अहं के माध्यम से देखा और भावावेग के अनुसार उसकी कालात्मक सत्ता को निसर्ग में प्रतिबिंबित पाया। उसके साथ तादात्म्य का अनुभव करते हुए उसे निखिलसौदर्य से मंडित प्रेयसी का स्थान दिया। फिर उसके संयोग और वियोग की मानसिक दशा में सुख–दुःख, आशा–निराशा आदि भावनाएँ व्यक्त करते हुए कवियों ने तत्वचिंतन के आधार उसका आध्यात्मीकरण एवं उदात्तीकरण भी कर दिया। स्त्री–स्वतंत्रता

का सबसे मौलिक और निर्णायक प्रदर्शन प्रेम और विवाह में उसकी अपनी इच्छा के चुनाव में प्राप्त होता है। अगर वह इस मामले में स्वतंत्र नहीं है तो वास्तव में वह स्वतंत्र नहीं है। स्त्री के प्रति छायावादी कवि के दृष्टिकोण का यह सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। "छायावाद युग के कवियों ने अनुभव किया कि मूल प्रश्न स्त्री–स्वाधीनता का है। प्रश्न विवाह का नहीं, प्रेम का है, बंधन का नहीं, मुक्ति का है। यदि विवाह में बंधन है तो चाहे वह विधवा–विवाह हो अथवा कुमारी का दोनों का आग्रह व्यर्थ है।"[8] प्रमुख छायावादी कवियों में शीर्षस्थ प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने स्त्री–विमर्श में उसकी प्रतिष्ठा वैयक्तिक तथा सामाजिक स्तर पर की है और अपने–अपने अनुसार तत्संबंधी विचारों का काव्य–कल्प भी किया है।

छायावादी कविता में स्त्री के नारकीय जीवन पर केवल क्षोभ ही प्रकट नहीं किया गया, अपितु स्त्री–सुधार सम्बन्धी अनेक भव्य आंदोलन भी हुए हैं, जिनमें आर्य–समाज, वीमेन्स इण्डियन एसोसिएशन, अखिल भारतीय कांग्रेस आदि संस्थाओं का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उक्त संस्थाओं द्वारा प्रचारित सिद्धान्तों तथा आंदोलनों के परिणामस्वरूप स्त्री को अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। स्त्री सुधार सम्बन्धी सिद्धान्तों को छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से मुखरित किया है। स्त्री विषयक दृष्टिकोण इस नूतन परिप्रेक्ष्य में, 'देवि! माँ! सहचरि! प्राण!' के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। इसमें स्त्री के वन्दनीय देवी, माँ, सह–चरि आदि रूपों की पुनर्प्रतिष्ठा हुई है –

ßrEgh gk Li'gk] vJ vkj gkl]
lf"V d mj dh lkl(
rEgh bPNkvk dh volku]
rEgh Lofxd vkHkkl(
rEgkjh lok e vutku
ân; g ejk vUr/kku(
nfo! ek! lgpfj! ik.k!Þ[9]

छायावादी कविता में स्त्री को जो महत्व प्राप्त है, वह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक गौरवशाली है। छायावाद के जनक जयशंकर प्रसाद

ने कामायनी में स्त्री लज्जा संग के प्रति आदर्श सोच रखी। उन्होंने स्त्री को पुरूष की प्रेरक शक्ति तथा श्रद्धा का पात्र माना।

ukjh rqe doy J)k gks fo'okl jtr ux ix ry esaA
ih;w"k lzksr lh cgk djks thou ds lqUnj lery esaA[10]

निराला ने 'तोड़ती पत्थर' शीर्षक कविता में चिलचिलाती धूप में पत्थर तोड़ती हुई मजदूरनी के कर्म के सौन्दर्य को जिस रूप में चित्रित किया है, वह उनकी मौलिक सौन्दर्यचेतना है। 'श्याम तन भर बँधा यौवन' मजदूरनी का कोमल स्त्री शरीर और पत्थर की कठोरता – दो परस्पर विरोधी भावों के मिलने से कर्म का सौन्दर्य और निखर जाता है। इसी तरह निराला ने वनबेला में प्रकृति के कठोर पक्षों के सौन्दर्य को उद्घाटित किया है। निराला की श्रमिका अपने कर्तव्य को पूजा भाव से निभाती है। छायावादी कवि स्त्री–विमर्श में करुणिक अभिव्यक्ति देकर उसके श्रम के महत्त्व को प्रतिष्ठित करते हैं–

^^og rksM+rh iRFkjA
dksbZ u Nk;knkj
isM+ og ftlds rys cSBh gqbZ Lohdkj]
';ke ru] Hkj c¡/kk ;kSou]
ur u;u] fiz; deZ&jr&eu]
xq# gFkkSM+k gkFk] djrh ckj&ckj izgkj&
lkeus r#&ekfydk vV~Vkfydk ikdkjA
p<+ jgh Fkh /kwi] xfe;ksa ds fnu
fnok dk rerekrk :i] mBh >qylkrh gqbZ yw]
:bZ T;ksa tyrh gqbZ Hkw] xnZ fpuxh Nk x;h
izk;% gqbZ nqigj] og rksM+rh iRFkjA

'निराला' स्त्री की दीन–हीन दशा देखकर एक ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसी के कारण भारत आज हीन–दीन दशा को प्राप्त कर रहा है –

ßvkl d.k lk iYyok ls {kj x;kA
tks 'k=q Hkkjr dk mlh ls lj x;kA

$$$$$$$$$$$$$$$$$$$$$$

;fn vcyk vkS dh l/kjrh ugh n'kk]
ykt gh lekt dh gekjs vc tkrh gSAþ[11]

सुमित्रानन्दन पंत का स्त्री–विमर्श उसके लावण्य पर आधारित है। सुकुमार उपमाओं के विशिष्ट अलंकारों से सुसज्जित स्त्री–सौन्दर्य का एक अतयुत्तम चित्र दृष्टव्य है –

rUgh fdl ni.k esa ldekjh! fn[kkÅ esa lkdkj\
,d dfydk esa vf[ky oLrq] /kjk esa Fkh rqe Loxhs iquhrAÞ[12]

महादेवी वर्मा स्त्री स्वातंत्र्य आन्दोलन की ध्वजावाहिका रही हैं। अतः छायावाद की इस विशेषता की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था।[13] भाव के धरातल पर जहाँ महादेवी जी की स्त्री संबंधी वेदनात्मक हैं, वहाँ विचार के धरातल पर संवेदनात्मक हैं। कवयित्री ने अपनी गद्य कृतियों विशेषकर ''श्रृंखला की कड़ियाँ'', मेरे प्रिय भाषण'' में और अन्यत्र भी जहाँ तहाँ सामाजिक समस्याओं तथा अभिशप्त स्त्री के संबंध में अभिव्यक्त उनके विचार बड़े ही सामयिक, क्रांतिकारी, सुधारवादी, भावात्मक और उत्तेजक हैं। ऐसे स्थानों पर वह दुर्दशाग्रस्त स्त्री का पक्ष–समर्थन बड़े ही तार्किक ढंग से कर उपयोगी सुझाव भी देती है, परम्पराओं और रूढ़ियों के बंधन तोड़ने का आह्वान करती है, अत्याचारी वर्ग को सावधान करती है और स्त्री–समस्याओं के संदर्भ में सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति आक्रोश व्यक्त करती हुई, स्त्री वर्ग को अपने सुखद भविष्य के लिये जागृत करती हैं। इस दृष्टि से देवी जी स्त्री विषयक वैचारिक पक्ष संवेदनात्मक और यथार्थन्मुख हैं।

महादेवी की स्पष्ट मान्यता है कि संवेदना के स्तर पर उस अलौकिक से प्रणय–संबंध सम्भव है। 'दीपशिखा' के गीत में वे कहती हैं–

ßtks u fiz; igpku ikrhA
nkMrh D;ks ifrf'kjk esa l;kl fo|qr lh rjy cu]
D;ks vpsru jks ikrs fpj 0;Fkke; ltx thou\
fdlfy, gj lk|l re esa
lty nhid jkx xkrh\Þ[14]

छायावादी काव्य में स्त्री–विमर्श अनेक रूपों में चित्रित हुआ है। गुण के आधार पर वह सौन्दर्यमयी, प्रेममयी, प्रकृतिमयी, साधनामयी, प्रेरणामयी, त्यागमयी और शक्तिमयी और रहस्यमयी है। पुरुष से विभिन्न परंपरागत सामाजिक संबंधों के आधार पर वह प्रेयसी, सखी, माता, पुत्री, पत्नी, वक्ष आदि रूपों में वर्णित है। वय, स्थिति और व्यवसाय भेद से वह बालिका, युवती, वृद्धा, नागरिका, ग्रामीण, विलासिनी, श्रमिक, विधवा, कार्यकर्त्री, पतिता, परित्यक्ता, कुमारी, नर्त्तकी के रूप में भी अभिव्यक्त हुई है। परन्तु उपर्युक्त समस्त रूपों में स्त्री के सौन्दर्यमयी प्रेयसी रूप को सर्वाधिक महत्व मिला है। सच तो यह है कि छायावाद में रूपवती प्रेमिका स्त्री, कवियों की वैयक्तिक दृष्टि और स्वच्छंद भाव वृत्ति के अनुकूल होने के कारण काव्य–विषय बनी। स्थूल स्त्री की मांसल और ऐन्द्रिय अनुभूति को सूक्ष्म स्त्री की इन्द्रियातीत अनुभूति में उदात्तीकृत कर देना छायावादी स्त्री–विमर्श की प्रमुख विशेषता रही है।

lUnHk %

1. विनीता वशिष्ठ, नारी तुम अबला कब तक, समाज कल्याण विभाग, उत्तर प्रदेश, 1998 पृ. 221.
2 राजेन्द्र यादव (संपा.), 'हंस', नामवर सिंह के साक्षात्कार से, अगस्त 2004, पृ. 195.
3 अमित शुक्ल, 21वीं सदी के बदलते परिदृश्य में स्त्री विमर्श, श्रृंखला, वा. 2, इशू 1, सितम्बर, 2014, पृ. 105–106.
4 मुकेश कुमार अरोड़ा, आधी आबादी का विमर्श, शोधधारा, वा. 2, नं. 1, जुलाई 2014, पृ. 20.
5 एम. रोजाल्डो एवं एल. लेम्पीयरे, विमेन, कल्चर एण्ड सोसाइटी, स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, स्टेनफोर्ड, 1974, पृ. 20.
6 राज जालान, विकास एवं ग्रामीण महिला परिवर्तनशील आयाम, प्रमोद बुक हाउस, वाराणसी, 2002, पृ. 1–3.
7 प्रभा खेतान (अनु.) : द सैकेण्ड सैक्स : सीमोन द वोउवार, पृ. 47
8 नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1979, पृ. 50–51.
9 सुमित्रानन्दन पंत, 'पल्लव', पृ. 119.
10 जयशंकर प्रसाद : कामायनी, भारती भण्डार, प्रयाग, पृ. 47

11 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, 'अपरा', पृ. 48; सिंह, गोपालशरण, 'माधवी', पृ. 75.

12 पन्त ग्रन्थावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पल्लव, पृ. 84.

13 विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, पृ. 96.

14 महादेवी वर्मा, दीपशिखा, पृ. 96.

****

iwoZ oSfnd dky esa ukjh ,oa /keZ

MkW vt; dqekj*

इतिहास की मार्क्सवादी धारणानुसार इतिहास में मूलभूत निर्णयकारी तत्व जीवन की तात्कालिक आवश्यकताओं का उत्पादन और पुनरुत्पादन हैं। किन्तु यह स्वयं दो प्रकार का होता हैं। एक ओर तो यह जीवन निर्वाह के साधनों एवं खाने–पीने की चीजों आदि का होता हैं। इन चीजों के उत्पादन हेतु अपरिहार्य औजारों का निर्माण होता है तो दूसरी ओर इससे कम महत्वपूर्ण स्वयं मनुष्यों का उत्पादन अर्थात् जनसंख्या बढ़ाने का काम होता हैं।[1] कथनाशय यह है कि एक ओर यह श्रम के विकास की अवस्था से निर्धारित होती है तो दूसरी ओर परिवार के विकास की अवस्था से। परिवार के विकास की आधारशिला नारी ही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था वाले समाज में पुत्र का विशेष महत्व अवश्य था। ऋग्वेद के विविध मंत्रों में पशुधन, ऐश्वर्य, भूमि तथा कई पुत्रों की प्राप्ति की प्रार्थना में आर्षजों की इच्छा मुखरित होती है।

उपर्युक्त विवरण का यह आशय कदापि नहीं हैं कि ऋग्वैदिक काल में नारियों की दशा सराहनीय नहीं थी। कन्या का जन्म सर्वथा अवांछनीय नहीं माना जाता था। ऋग्वेद नारियों की गौरवपूर्ण स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है। सामाजिक कार्यों की पूर्णता एवं सम्पन्नता में नारियों की केन्द्रीय भूमिका का दर्शन प्राप्य हैं। नारियों के लिए शिक्षा, दीक्षा एवं अध्ययन–अध्यापन की विशेष व्यवस्था ऋग्वैदिक काल में मिलती है।

ऋग्वेद में 24 ऋषिकाओं[2] का समुल्लेख है, जिन्होंने वैदिक मंत्रों का दर्शन किया था और यह ज्ञान गरिमा उनकी उच्च शैक्षिक एवं समादृत सामाजिक स्थिति का परिचायक हैं। इन विदुषी नारियों द्वारा दृष्ट मंत्रों की संख्या 224 मिलती हैं। प्रत्येक सूक्त किसी न किसी विशेष विषय

---

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, मड़ियाहूँ पी०जी० कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ०प्र०

सामग्री का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऋद्धि कामायनी का शुद्ध सूक्त मनोविज्ञान की दृष्टि से विशेष सारगर्भित हैं। इसमें श्रद्धा के महत्व को प्रोद्भाषित किया गया हैं। सूर्या सावित्री के सूक्तों में विवाह संस्कार वर्णित हैं ये सूक्त सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। इन सूक्तों के अवगाहन से विदित होता हैं कि नारियाँ सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में भी अपनी सक्रिय एवं प्रभावी उपस्थिति दर्ज कराती थी। शची–इन्द्राणी के गौरव की चर्चा करते हुए उन्हें समाज में अग्रगण्य कहना उच्चकोटि की वक्ता की उपाधि से समलंकृत करना, उनके पुत्र को समूहों का विजेता कहना, पुत्री को तेजस्विनी कहना आदि नारी–समाज के महत्व एवं बहुआयामी होने की सूचना देता हैं।[3] ऋग्वेद में सुशील, विनीत एवं सरल स्त्री को कल्याणकारी कहा गया है।[4] दुःशील स्त्री को कष्ट कारक माना गया है। सुशील स्त्री को परिवार के लिए लक्ष्मी तथा परिवार की श्रीवृद्धि का प्रधान कारक माना गया है।[5] सुशील स्त्री ही पति को प्रिय होती है। लज्जाशीलता स्त्री का भूषण बताया गया हैं।[6] स्त्री ज्ञानदात्री (आचार शिक्षिका) के रूप में चित्रित की गयी है।[7] मधुरभाषी होना स्त्री का श्रेष्ठ गुण बताया गया है[8] स्पष्ट है कि वह विद्या, शिक्षा एवं ज्ञान के प्रसार का प्रमुख आधार हैं।[9] प्रसन्नचित्त रहना[10], परिश्रम करना तथा परिवार की स्वामिनी के रूप में उसका पोषण करना[11] स्त्री का प्रधान धर्म है। ऐसी ही सुशीला धर्मपत्नी को गृहलक्ष्मी की अविधा से अलंकृत किया गया है।[12] ऐसी ही गृहलक्ष्मी पत्नी को पति के सौभाग्य का वर्धन करने वाली कहने के पीछे यह धारणा ही है। आचारवान पत्नी ही यथार्थ घर है। उसी का सदाचार घर को सुख समृद्धि से आह्लादित कर देता है। निःसन्देह पत्नी का धर्म पति का प्रेम प्राप्त करना हैं।[13] इसीलिए मर्यादा से आवृत अलंकृत जीवन–यापन का निर्देश स्त्री के लिए देते हुए श्रृंगार के द्वारा पति को अनुरंजित करने तथा पति के निर्देश या अनुरोध को अंगीकार करना नारी का भूषण बताया गया।[14] किन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं हैं कि पत्नी का यह पति के प्रति समर्पण एकांकी होता हैं अपितु पति को भी निर्दिष्ट किया गया कि पति, पत्नी को आह्लादित करे।[15] ऋग्वेद में स्त्रियों के सामाजिक सम्मान को भी मुखरित करने विषयक सूक्तों का अभाव नहीं हैं। अग्नेया, ऋतुया एवं रत्नधा, प्रभृति

शब्दों का प्रयोग स्त्रियों के सामाजिक सम्मान का द्योतक हैं। विनम्रता, शीलदान, शीलता तथा धर्मपरायणता सर्वत्र स्त्री का भूषण स्वीकार किया गया हैं। आस्तिकता आत्मिक बल तथा तेजस्विता का प्रेरक तत्व हैं। उदारता व्यक्तित्व के विकास का आधार हैं। समाज में मानवीय गुणों के ही आधार पर प्रतिष्ठा प्रतिष्ठापित होती हैं। अतएव उदार स्त्री को अभिनन्दनीय माना जाना सर्वथा स्वीकार किया गया है। उदार स्त्री ही दुखी को, प्यासे को तथा याचक को समझ सकती है तथा उसको राहत दे सकती है और यही सत्कर्म व्यक्ति को अभिनन्दनीय बनाता हैं। ऐसी स्थिति में नारी–धर्म एवं उसका धार्मिक जीवन सर्वथा सेवा भाव के लिए अर्पित हैं। जहाँ स्त्री को सेवाभाव के प्रति समर्पित बताया वहीं उसे यज्ञों में पति के साथ सहभाग करने, प्रतिदिन यज्ञ करने तथा यज्ञ में सजधजकर आगे–आगे रहने आदि के निर्देश स्त्रियों के धर्म तथा धार्मिक जीवन को प्रोद्भाषिक करता है।[16] भूमिदेवी, ज्ञानदेवी तथा वाग्देवी की अभय अर्चना में नारी धर्म एवं शक्ति का उद्घाटन होता है।[17] वाग्देवी के साथ और शक्ति, भूमि देवी के साथ देवों तथा मनुष्यों की शक्ति, ज्ञान देवी के साथ ज्ञान शक्तियों की अभिव्यंजना नारी को एक प्रकार से पूर्ण रूप में व्यक्त करने का अद्भुत तरीका दृष्टिगत होता है। इन तीनों देवियों को यज्ञ की रक्षा का भी दायित्व सौपा गया है। यज्ञ में इन्द्र एवं अग्नि की पत्नियों को जनहित में सोमपान हेतु आमंत्रित किया गया है, जो उनके गौरव को उद्भाषित करता है।[18]

उपर्युक्त उल्लेखों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारियों की सहज उपस्थिति, सहभागिता, सहकार एवं सान्निध्य सर्वथा स्पृहणीय थी। इसीलिए उनके कर्तव्य की परिधि आदि वृहत्तर थी तो निश्चितमेव उनसे समर्पण, निष्ठा, त्याग सेवा एवं भक्ति की भी अपेक्षा ऋग्वैदिक समाज को हुयी और उस पर नारियां खरी भी उतरी। ऋग्वैदिक साहित्य में स्पष्टतः घोषित किया गया है कि विवाह का उद्देश्य है गृहस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानोत्पत्ति करना। इसका आशय स्पष्ट है कि पति बिना पत्नी के धार्मिक कृत्यों के सम्पादन हेतु। न तो अर्ह है और न ही ऋणों से मुक्ति का अन्य कोई उसके पास सशक्त

साधन या उपाय हैं अर्थात् धार्मिक जीवन की सम्पन्नता एवं पूर्णता नारी पर ही आधृत हैं और नारी ही नर को पूर्णता प्रदान करती हैं।

I UnHk %

1. हाबहाउस. एल.टी.; मॉरल्स इन इवाल्यूसन, पृ० 57–59
2. वही
3. कठोपनिषद् 1.1
4. पाण्डेय, गोविन्द चन्द, पृ० 286–287
5. वृहदारण्यक उपनिषद्, 4.4.2 एवं 4.4.3–5 एवं रानाडे, कान्सट्रक्टिव सर्वे आफ उपनिषिदिक फिलासफी, पृ० 615
6. भागवद्गीता, 2.47
7. सांख्यायन गृह्यसूत्र, 1.1.2
8. पारस्कर गृह्यसूत्र, 1.1.2
9. वैदिक एज, पृ० 474–475
10. हिरण्यकशीय गृह्यसूत्र, 2.18.6
11. त्रिवर्ग के अन्तर्गत धर्म, अर्थ एवं व्योम की गणना होती है।
12. कात्यायन श्रौतसूत्र अध्याय 1 से 26 तक
13. गौतम धर्म सूत्र अध्याय 1 से 28 तक
14. यहाँ पर मंगल से तात्पर्य विहित कार्य करने से है।
15. गौतम धर्मसूत्र 8.24.6
16. वशिष्ठ धर्मसूत्र, 10.309, बौधायन धर्मसूत्र, 1.10.6, 3.1.17
17. गौतम धर्मसूत्र, 28.36.40
18. वही, 28.21–22, 28.41

****

;'kiky dh *fn0;k* vkj L=h foe'k

MkW0 idk'k pUn iVYk*

स्त्री के संदर्भ में मार्क्सवादी चिंतन का मूल ग्रंथ है, फ्रेडरिक एंगिल्स का 'द ओरिजन आफ द फेमली, प्राइवेट प्रॉपर्टी एण्ड द स्टेट' जो यह मानता है कि स्त्री का शोषण वहाँ से शुरू हुआ जहाँ से वैयक्तिक सम्पत्ति का प्रावधान। उत्पादन के साधनों पर जिन थोड़े से लोगों का प्रभुत्व हुआ, वे मर्द थे। कार्पोरेट कैपिटलिज्म तथा साम्राज्यवाद के पितृसत्तात्मक पूर्वग्रहों के मूल में है पूँजीवाद। पूँजीवादी और पितृसत्तात्मकता का गठबंधन पुराना है। कुल मिलाकर देखा जाए तो पूँजीवादी पितृसत्तात्मकता की चार संरचनाएं मानी जा सकती है–

1. प्रजनन, 2. उत्पादन, 3. बच्चों का समाजीकरण और 4. यौन शक्ति।[1] आपस में ये संरचनाये एक दूसरे पर निर्भर हैं और स्त्री मुक्ति तभी संभव है, जब इन चारों स्तरों पर अमूलचूल परिवर्तन किया जा सके। कथाकार यशपाल ने अपने महत्वपूर्ण उपन्यास 'दिव्या' के द्वारा स्त्री से जुड़े प्रश्नों को समाज के सामने रखा। 'दिव्या' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1945 ई0 में हुआ इस समय भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन अपने चरम पर था। जहाँ एक तरफ स्त्री से जुड़े आन्दोलनों के द्वारा स्त्री की स्वतंत्रता की बात कही जा रही थी, वहीं दूसरी तरफ यशपाल ने अपने इस उपन्यास के द्वारा नारी के शोषण को बनाये रखने वाली व्यवस्था को परत–दर–परत उघाड़ा और उस पर गंभीर चोटे भी की। इस उपन्यास में यशपाल ने अतीत का आवरण ग्रहण किया, लेकिन बात अपने समय की कही। इशारा अपने युग को समझने–समझाने का था। दरअसल अतीत का आधार ग्रहण करने का तात्पर्य अतीत की कथा को कहना नहीं है, बल्कि अपनी बात को और प्रभावशाली ढंग से कहना मजबूत आधार गढ़ना हैं। इस बात को यशपाल 'दिव्या' उपन्यास की

*सहायक आचार्य (हिन्दी विभाग), पी0जी0 कालेज, भुड़कुड़ा, गाजीपुर, उ0 प्र0

भूमिका में ही स्वीकार करते हैं, ''दिव्या इतिहास नहीं ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है।''[2] यशपाल ने इस उपन्यास में बौद्धकालीन प्राचीन भारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक वातावरण का चित्रण करके राजतंत्र बनाम गणतंत्र, दासप्रथा एवं वर्णप्रथा, वर्णाश्रम व्यवस्था एवं धर्मचक्र व्यवस्था, कुलीन नारी एवं स्वतंत्र वेश्या नारी आदि से जड़े प्रश्नों को उठाया है; लेकिन, उन्होंने प्रमुख रुप से दिव्या के माध्यम से एक नारी की समस्या से पाठकों को रूबरू कराया हैं। उपन्यास के आरम्भ में सागल गणराज्य में मधुपर्व का आयोजन है। इस उत्सव में श्रेष्ठ नृत्यांगना को सरस्वती पुत्री का सम्मान दिया जाता है सर्वश्रेष्ठ वीर को श्रेष्ठ खड्गधारी का सम्मान दिया जाना हैं। देवशर्मा की प्रपौत्री दिव्या को सरस्वती पुत्री का सम्मान दिया जाता हैं। पृथुसेन को सागल का सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी चुना जाता हैं सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी चुन लेने के बावजूद भी पृथुसेन दिव्या के शिविका को कन्धा नहीं दे पाता है, क्योंकि वह आभिजात्य नहीं हैं। पृथुसेन अपने साथ हुए अपमान के न्याय हेतु धर्मस्थ देवशर्मा से मिलता हैं, जहाँ उसकी मुलाकात दिव्या से होती है। दिव्या और पृथुसेन एक दूसरे की तरफ आकर्षित होते हैं और उनके बीच प्रेम का अंकुर जन्म लेता हैं। केन्द्रस के द्वारा सागल पर आक्रमण होने पर सेना का प्रतिनिधित्व करने वाला उच्च वर्ण में कोई वीर न मिलने पर पृथुसेन को सेनानायक बनाया जाता हैं। दिव्या द्वारा बार–बार पृथुसेन के साथ विवाह करने के लिये दबाव देने पर भी युद्ध तक टाल दिया जाता हैं। क्योंकि ऐसा होने पर ब्राह्मणों में व्रिदोह हो जायेगा। युद्ध पर जाने से पूर्व संध्या को युद्धाभ्यास से थका पृथुसेन दिव्या के पास आश्रय पाता है। पृथुसेन केन्द्रस की सेना को पराजित करके चार मास में लौटता है। लौटने पर दिव्या की उपेक्षा करता है। इधर दिव्या अपने गर्भ में पल रहे पृथुसेन के अंश को लेकर चिन्ताआतुर हो जाती हैं। अन्त में, दिव्या कोई आश्रय न मिलने पर पान्थशाला की शरण लेती हैं। लेकिन, एक वृद्धा के षड़यन्त्र का शिकार होकर वह कैद कर ली जाती है और यहीं से दिव्या के नारकीय जीवन की यात्रा शुरू होती है। एक स्त्री के रुप में उसका शोषण किन–किन स्तरों पर होता है? इसे उपन्यासकार

ने सजीव रुप में प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में रामदरश मिश्र कहते हैं, ''उपन्यास में सामन्ती समाज और राज्य–व्यवस्था के अनेक दोषों, प्रवृत्तियों आदि का मार्मिक अंकन किया गया है किन्तु इस व्यवस्था में नारी के स्वरुप को दिखाना जैसे उसका मुख्य लक्ष्य हैं। 'दिव्या' नाम से ही प्रतीत होता है कि उसी के जीवन को लेकर एक व्यक्ति (नारी) की समस्या, यातना, बेबसी, प्रवृत्ति की गतिशील रुप में दिखाना लेखक का लक्ष्य रहा हैं।''[3]

उपन्यास में आये मोक्षा के पुत्र उत्सव की रात्रि में दिव्या पृथुसेन से मिलने जाती हैं, लेकिन पृथुसेन द्वारा मिलने से इनकार करने पर वह दुःखी मन से वापस लौटती है। रास्ते में वृक दिव्या के शिविका के आगे खड़ा होकर उसे आगे जाने से रोकता है और धाता द्वारा यह कहने पर कि यह कुलीन नारी की शिविका है इसका परिणाम कठिन होगा। इसके प्रत्युत्तर में वृक कहता है, ''..... नारी का कुल क्या? उसे भोगने वाले पुरुष के कुल से नारी का कुल होता है! दार्व के कुलीन के हृदय पर पांव रख कर छीनी हुई शत स्वर्ण मुद्रा अभी शूर वृक की बसी में समाप्त नहीं हुई। वृक ने दार्व की भय से कांपती महाकुलीन सुन्दरियों का भोग उसके रजत पर्यंकों पर किया है। कुलीन सुन्दरी बोलो, तुम्हारे सहवास का क्या मूल्य है? यदि तुम वसुमाला और मल्लिका भी हो तो भी स्वर्ण का दण्ड तुम्हारे द्वार पर खड़े प्रतिहारियों को नत कर देगा। तुम स्वयं उसके सम्मुख विनीत प्रार्थिनी हो जावोगी। सुन्दरी, मेरे मुख से मेरय की कटु गंध नहीं, द्राक्षी की मधुर सुवास सूघो जो तुम्हारे प्रसाधन उपचार से सुवासित शरीर के स्वेद के समान प्रिय है।''[4] वृक के कथन से यह स्पष्ट होता है कि समाज में नारी का कोई स्थान नहीं हैं। वह मात्र उपभोग की वस्तु हैं। अर्थ के आधार पर किसी भी स्त्री का उपभोग किया जा सकता हैं। समाज में इस प्रकार की व्यवस्था कायम है, जो स्त्री को आसानी से अपना शिकार बना लेती हैं। यात्रा में असुविधा के कारण दिव्या को श्रेष्ठी प्रतूल ने मथुरा के दास व्यवसायी भूधर को बेच दिया। भूधर से दिव्या को चक्रधर नामक पुरोहित दासी के रूप में उसके पुत्र के साथ क्रय करके ले गया, ताकि दिव्या उसके नवजात शिशु का पोषण अपने स्तन के दूध से कर सके। उसकी पत्नी विषम ज्वर से पीड़ित होने के कारण वैद्य ने उसका दूध नवजात शिशु के लिए मना किया था। दिव्या यहाँ पर दारा नाम के दासी के रूप में

रहने लगी। दारा ने यहाँ पर अपने पुत्र शाकुल के साथ–साथ पुरोहित के पुत्र का पोषण कर सकने के कारण अधिक सुख का अनुभव किया। किन्तु उसका यह सुख ज्यादा लम्बे समय तक नहीं रह सका। उसकी स्वामिनी की आज्ञा थी कि वह पहले उसके पुत्र को स्तनपान कराने के बाद ही अपने पुत्र को स्तनपान कराये। ऐसा करने पर दारा का पुत्र भूखा रह जाता, जो उसके लिए असह्य था। यहाँ अपने पुत्र के लिए उसका अन्तरद्वन्द्व देखने लायक है, ''हे देवता, अपना अपराध या दुष्कर्म जाने बिना यह अबोध बालक दुष्कर्म से बचने का निश्चय कैसे करे? यदि दुष्कर्म मैंने किया है तो दण्ड और भोग के लिए प्रस्तुत हूँ। मेरा पुत्र क्यों क्षुधा–पीड़ित हो?.....मैंने कौन दुष्कर्म किया है? क्या पृथुसेन से अनुराग पाप था? क्या गर्भ धारण करना ही पाप था?.....सम्पूर्ण सृष्टि गर्भधारण करती है, मैंने क्या किया?.....केवल द्विज–समाज की आज्ञा के बिना गर्भ धारण किया, इसी कर्म का यह फल है? क्या कर्मफल देने वाला द्विज समाज ही हैं?''[5] यहाँ पर दिव्या के अर्न्तद्वन्द्व के द्वारा लेखक पूरी समाज व्यवस्था पर अँगुली उठाता हैं। वह ब्राह्मण समाज द्वारा बनाये गये जन्म और कर्म फल की व्यवस्था, पाप–पुण्य की व्यवस्था तथा द्विज समाज की सर्वेच्चता की व्यवस्था पर सवाल खड़ा करता है। इसके साथ–साथ रचनाकार ने अपने समय में महत्वपूर्ण स्थान अर्जित कर चुके और जनमानस में लोकप्रिय बौद्धधर्म की प्रगतिशीलता पर भी सन्देह व्यक्त किया है। बौद्ध धर्म में नारी स्वतन्त्रता किस सीमा तक है, इसका स्पष्ट उल्लेख उपन्यास में है। दारा के रूप में पुरोहित चक्रधर के घर अपना जीवन व्यतीत कर रही दिव्या ने जब भिक्षाटन कर रहे भिक्षुओं के मुख से ये वचन सुना, ''दुःख से पीड़ित मनुष्यों, तथागत की शरण में आओ! धर्म की शरण में आओं। वहीं कृपा मूर्ति तुम्हारे संतप्त संताप को दूर करेंगे।''[6] तब दिव्या ने अपने पुत्र के लिए बौद्ध धर्म अंगीकार करने का निश्चय किया। वह प्रचण्ड दोपहर में अपने पुत्र को पीठ पर बाँधे चुपके से पुरोहित चक्रधर के घर से निकल पड़ी। वह बिहार के द्वार पर पहुँची और संघ में शरण के लिए प्रार्थना करने लगी। स्थविर द्वारा यह कहने पर कि क्या तुम्हारे चेरी धर्म ग्रहण करने में तुम्हारे पति, पिता और पुत्र में से किसी की अनुमति है। दिव्या ने कहा पति और पिता नहीं है तथा पुत्र अनुमति देने योग्य नहीं है, तब स्थविर ने पुनः प्रश्न किया, ''यदि तुम दासी हो

तो क्या अपने स्वामी की अनुमति से चेरी धर्म ग्रहण करने की इच्छा करती हो?''[7] दिव्या ने नहीं में सिर हिलाकर, संघ में शरण के लिए प्रार्थना की। स्थविर ने दारा की ओर देखकर कहा, ''देवी धर्म के नियमानुसार स्त्री के अभिभावक की अनुमति बिना संघ स्त्री को शरण नहीं दे सकता।''[8] दिव्या ने पुनः स्थविर से निवेदन करते हुए कहा, ''भगवान तथागत ने तो वेश्या अम्बपाली को भी संघ में शरण दी थीं।'' इसके प्रत्युत्तर में स्थविर ने कहा, ''वेश्या स्वतन्त्र नारी है।'' यहाँ पर उपर्युक्त कथन से व्यक्त होता है कि दिव्या जो अपने और अपने पुत्र जीवन के लिए संघ की शरण लेना चाहती है। वहीं संघ उसे प्रवेश की अनुमति नहीं देता, क्योंकि इसमें उसके पिता, पति, पुत्र और स्वामी की अनुमति नहीं है। वह एक वेश्या को शरणा में लेता है, क्योंकि वह उसे स्वतन्त्र मानता है। यहाँ पर बौद्ध धर्म की सीमाएँ स्पष्ट अंकित होती है। जो धर्म अपने आप में क्रान्तिकारी होने के बावजूद स्त्री को पुनः उसी वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा बनाये गये चौहद्दी में बाँध देता है तथा एक साधारण स्त्री को समाज में हेय दृष्टि से देखे जाने वाले वेश्या जीवन को अपनाने के लिए मजबूर करता है।

अतः यशपाल ने इस कथा के माध्यम से स्त्री जीवन की विद्रुपताओं को चित्रित करते हुए स्त्री मुक्ति का आख्यान गढ़ा है। इसमें दिव्या के बहाने सम्पूर्ण नारी जाति की समस्या पर विचार किया गया है। इस उपन्यास के बारे में चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर कहते है– ''दिव्या की समस्या जिस तरह नारी की समस्या है, उसी तरह दिव्या का संघर्ष व्यक्ति से अधिक वर्ण और धर्म से है। ऐसे समय जबकि उपन्यासकार व्यक्ति के संघर्ष को वर्ण और धर्म के भीतर से देखता है, व्यक्ति का सामान्यीकरण करता है।''[9]

अंत, में, मैं वीरेन्द्र यादव के इस कथन से बात समाप्त करता हूँ कि ''इतिहास का उपन्यास के साथ गहरा रिश्ता रहा है, और सच तो यह है कि सही ऐतिहासिक अर्न्तदृष्टि के बिना सार्थक उपन्यास नही लिखे जा सकते। लेकिन जब इतिहास ही उपन्यास की कथावस्तु हो तो यह चुनौती और भी बढ़ जाती है।''[10] यशपाल की दिव्या और उसमें निहित स्त्री विमर्श को वैसे ही विवेक से देखने की जरूरत रही है।

lUnÒ %

1. अनामिका. 2012; स्वाधीनता का स्त्री पक्ष, राज0 प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 179।
2. यशपाल, दिव्या. 2006; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 11।
3. मिश्र, रामदरश. 2012; हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 205।
4. यशपाल, दिव्या. 2006; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 93।
5. वही, पृ0 115।
6. वही, पृ0 116।
7. वही, पृ0 119।
8. वही।
9. बान्दिवडेकर, चन्द्रकान्त. 2006; उपन्यास स्थिति और गति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 347।
10. सिंह, नामवर. (संपादक); आधुनिक हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, पृ0 26

****

Mk- vEcMdj vkj nfyr efgyk

vfiirk frokjh*

डॉ. अम्बेडकर ने दलित महिलाओं से अपनी बच्चियों की शादी कम उम्र में ना करने की अपील करते हुए उनको शिक्षित कर अपने पैरों पर खड़ा होने पर बल दिया तथा कम बच्चे पैदा करने व साफ–सफाई से रहने का संदेश देते हुए महिलाओं का परिवारों में समानता का स्तर हो, इस पर भी बात की। उन्होंने महिलाओं में स्वाभिमान जगाते हुए कहा कि आप घर में पति की दासी बनकर नहीं पति की दोस्त बनकर बराबरी के रिश्ते से जिए। नागपुर में 1942 में शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की स्थापना होने के बाद नासिक में शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की मीटिंग में शान्ता बाई दाणी को पार्टी का जिलाध्यक्ष बनाया गया। 1944में भी कानपुर में दलित फेडरेशन के दूसरे अधिवेशन में भी महिलाओं ने अपना स्वतंत्र अधिवेशन किया तथा नागपुर जैसे ही प्रस्ताव पारित किए गए। इसकी अध्यक्षता कु.शान्ता बाई दाणी ने की। इस अधिवेशन में बाबा साहब ने भाग लेते हुए कहा, 'आप आगे बढ़ें, आपके जीवन में सुनहरी सुबह का पदार्पण हुआ है।' 6 मई 1945 में तीसरा 'अखिल भारतीय अस्पृश्य महिला परिषद' का अधिवेशन मुंबई में आयोजित किया गया जिसमें हज़ारों दलित महिलाओं ने भाग लिया। सभा की अध्यक्षता तत्कालीन मद्रास प्रांत की प्रमुख कार्यकर्ता मीनांबल शिवराम ने की। इस सभा के मुख्य वक्ता शांता बाई दाणी, सरोजिनी जाधव, मुक्ता सर्वगौड़, हैदराबाद की सौ. राजमणि मुंबई की गोदावरी रोकड़ आदि ने स्त्री–पुरुष विषमता पर तीखे विचार रखे। उन्होंने कहा कि पुरुष विषमता की शिकार महिला को अपनी मुक्ति के लिए किस तरह के कदम उठाने चाहिए, उन्होंने इसका मार्ग दर्शन किया। परिषद की अध्यक्षीय भाषण में सरोजिनी जाधव ने कहा कि ''अस्पृश्य स्त्री सर्वदृष्टि से परतंत्र है। अगर उसे स्वतंत्रता प्राप्त करनी है तो अस्पृश्य महिलाओं का आंदोलन निर्माण होना

*चन्देरी, अशोक नगर, मध्य प्रदेश

चाहिए।''[1] मिनांबल शिवाराम ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि, ''अस्पृश्य स्त्री विधवा विवाह, घटस्फोट इन प्रथाओं से मुक्त होते हुए भी केवल हिन्दू धर्म के कायदा कानून उस पर लदे होने के कारण उसकी स्थिति दुःखद हो गई है। दलित महिला को हिन्दू धर्म का त्याग करना चाहिए। दलित महिलाओं को घूँघट निकालना छोड़कर निर्भय होकर आत्मविश्वास से जीना चाहिए।'' दलित आत्मकथा लिखने वाली मुक्ता सर्वगौड ने ''स्त्री–पुरुष समान हैं और दोनों की जिम्मेदारी भी बराबर की है, ऐसा भाषण देकर अपने क्रांतिकारी विचार प्रकट किए।''[2]

पुणे 29 मई 1956 को महाराष्ट्रीय चमार–ढोर परिषद हुई। इस अधिवेशन में भी सेवा सदन श्रीमती सावित्री बाई बोराडे व गुणाबाई वाघमारे दोनों ने ही भाषण दिया। इस भाषण में सावित्री बाई बोराडे ने कहा, ''लड़कों से ज्यादा लड़कियों की शिक्षा की जरुरत है। भावी पीढ़ी के अनर्थ टालने के लिए स्त्री–शिक्षा की जरुरत है। बच्चों की शिक्षा केवल माताओं पर निर्भर करती है। हमें दूसरों पर निर्भर होने की याचक–वृति को खत्म करना चाहिए। सफाई, अच्छी सेहत, सुश्रुषा इन सबके लिए शिक्षा की जरुरत हैं।'' इसके बाद गुणाबाई वाघमारे ने कहा कि महिलाओं को पढ़ना चाहिए। महिला पढ़ी–लिखी होगी तो बच्चों पर अच्छे संस्कार डालेंगी। अपने आगे भावी पीढ़ी को शिक्षा के माध्यम से होशियार और संस्कारी बनाएगी। इसलिए महिलाओं को शिक्षित होना जरुरी है।

पृथक प्रतिनिधित्व, पृथक चुनाव क्षेत्र के लिए किया गया समझौता पूना करार कहलाता है। उस पूना समझौते के तहत सरकार व गाँधी द्वारा दलित समाज को किए गए सारे वादे झूठे निकले। इसलिए 'अखिल भारतीय दलित फेडरेशन'की तरफ से भारतीय विधान मंडल के सामने सत्याग्रह करने का फैसला किया गया। इस सत्याग्रह में बम्बई, पूना, कानपुर, उत्तर प्रदेश से हज़ारों दलितों ने भाग लिया। इस सत्याग्रह में सीताबाई, गीताबाई गायकवाड आदि दलित स्त्रियों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रसिद्ध दलित नेता भाउराव गायकवाड के भाई काशीनाथ गायकवाड को भाउराव समझकर अहिंसक गाँधीवादियों ने उनकी खूब

पिटाई की, जिसमें उनका एक कान भी टूट गया। दलित दमन के इस रुप को देख दलित सत्याग्रहियों ने जेल भरो आंदोलन शुरु कर दिया। इस जेल भरो आंदोलन में अनेक दलित महिलाएँ अपने छोटे–छोटे बच्चों के साथ जेल में भूखी–प्यासी बन्द रहीं। एक बड़ी रोचक घटना है जब सत्याग्रही जेल भरने के लिए जुलुस के रुप में नारे लगाते जा रहे थे। मनोरमा बाई, तुलसीराम धोत्रे, काशीबाई जैतापकर आदि दलित कार्यकर्ता सत्याग्रह में शामिल होकर जेल गए। मनोरमा बाई तो 15 दिन जेल मे रहीं। श्रीमती वोराडे अपने छोटे–छोटे बच्चों के साथ जेल में कैद थीं। न्यायाधीश उसके छोटे बच्चों पर दया दिखाते हुए बोला, ''बहिन जी आपका बच्चा बहुत छोटा है, आप अपना गुनाह कबूल कर माँग कर घर जाईये'', इस पर श्रीमती वराडे ने जज़ से कहा ''जिस दिन हमने घर छोड़ा था, पूरी तरह सोच–समझ कर छोड़ा था। फिर भी हम पीछे हटने वाले नहीं है। मैनें गुनाह किया है तो मुझे सज़ा दीजिए।'' जेल से छूटने के बाद निर्भीक, बहादुर श्रीमती वौराडे का बहुत ही लम्बा ओर विचारोत्तेजक साक्षात्कार 'जनता पत्र' में छपा था।[3]

इस प्रकार दलित महिला आंदोलन आरम्भ में स्वागत गीत के माध्यम से, ज्ञान शिक्षा के प्रयास द्वारा मन्दिर–प्रवेश, पानी, समान वेतन, अस्पृश्यता, विधायिका में अधिकार, पुरुषों की गुलामी से मुक्ति आदि मुद्दों को प्रतीक बनाकर डॉ. अम्बेडकर का हाथ थाम धीरे–धीरे समानता, अस्पृश्यता व गरीबी तीनों स्तर पर शोषण से संघर्ष कर अपनी वैचारिक समझ बनाता हुआ मुक्ति की राह पर चलकर दलित आंदोलन का प्राण व अन्य आंदोलनों का प्रेरणास्रोत बन गया। आज़ादी, अस्मिता संघर्ष के उबड़–खाबड़ संघर्ष भरे रास्ते से गुजरता हुआ दलित महिला आंदोलन दलित नारीवाद की सीमा में प्रवेश कर गया। भारत में जगह–जगह चले इस आंदोलन में हजारों की संख्या में दलित महिलाएँ जुड़ी, जेल गई, रात–दिन धरनों पर भूखी प्यासी बैठीं और हिम्मत, बहादुरी, धैर्य, लगन से अपनी माँग पूरी करने लिए संघर्षशील रहीं। दलित महिला आंदोलन अस्पृश्यता, लिंगीय भेदभाव, असमानता के किले को ध्वस्त करने के लिए शिक्षा के हथियार को धार देता रहा। अनेक दलित स्त्रियाँ दलित समाज के लिए स्कूल कॉलेज हॉस्टल खोलने के साथ–साथ पत्र पत्रिकाओं में लिखने

लगीं व उनका संपादन व प्रकाशन भी करने लगीं कई दलित स्त्रियाँ सामाजिक कार्य के साथ–साथ लेखन को क्षेत्र में बढ़ते हुए प्रसिद्ध लेखिकाओं के रुप में स्थापित हुई। अम्बेडकरकालीन दलित महिला आंदोलन में सैकड़ों दलित महिलाएँ निकल कर आई, जिन्होंने दलित–मुक्ति के संघर्ष की कमान अपने हाथों में संभाल ली। रमाबाई अम्बेडकर, तुलसी–बनसौडे, गीताबाई गायकवाड, अंजनी बाई देश भ्रतार, शान्ता बाई दाणी, जाईबाबा चौधरी, सीता बाई गायकवाड, इन्दिरा पाटिल, कीर्ति पाटिल, सुलोचना डोगरे, राधा बाई लक्ष्मी नायक, सुराबाई मोहिते, वेणुबाई भटकर, रंगबाई शुभकर, तानुबाई कांबले राधा बाई वराडे, कौशल्या बैसेन्त्री, बेबी ताई कांबले, मीनाबल शिवराम शांता बाई सरौदे और ना जाने कितनी अनाम, अज्ञात दलित औरतें जो इतिहास की गर्त में छिप गई इन सभी ने घर–परिवार, फैक्ट्रियों, खेतों–खदानों से निकलकर दलित महिला मुक्ति का परचम चारों दिशा में फहराया।[4]

lUnHkZ %

1. उर्मिला पवार एवं मिनाक्षी मून; आम्ही इतिहास घड़वला, पृ.78
2. उर्मिला पवार एवं मिनाक्षी मून; आम्ही इतिहास घड़वला, पृ.78
3. उर्मिला पवार एवं मिनाक्षी मून; आम्ही इतिहास घड़वला, पृ. 82–83
4. सिंह, तेज (सं0). 2008; अम्बेडकरवादी विचारधारा और समाज, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 226

****

ckck lkgc vkj nfyr efgyk vknkyu 1930 l 1934 rd d dky d lUnHk e

vrqy xqIrk*

vtyh x<oky**

1930 से 1934 तक का काल बाबा साहब और दलित महिला आंदोलन के लिए उपलब्धि भरा काल कहा जा सकता है। इस कालावधि में कई अभूतपूर्व घटनाएं घटीं। एक तरफ तो नासिक के कालाराम मन्दिर –प्रवेश का आंदोलन 2 मार्च 1930 से लेकर 1934 तक पूरे चार साल लगातार चला। इस आंदोलन में महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक और अन्य राज्यों व देश के विभिन्न भागों से 10 हज़ार से अधिक महिला पुरुष सत्याग्राही शामिल हुए दूसरे इन सत्याग्राहियों की पूरी देखभाल जैसे खाने–पीने तथा ठहरने आदि का इंतजाम पहली बार दलित महिलाओं ने जिस निष्ठा और मेहनत से किया, वह अपने आप में एक मिसाल है। इस आंदोलन द्वारा दलित महिलाओं की चेतना कितने प्रखर रुप में विकसित हो गई थी, इस बात को समझने के लिए केवल एक उदाहरण ही काफी है कि ''जब 1 अप्रैल 1930 में मन्दिर–प्रवेश के दौरान पुजारी द्वारा दलित महिलाओं को पीछे धक्का मार दिया तब एक दलित महिला ने उस पुजारी के मुँह पर सनसनाता थप्पड़ रसीद कर दिया।''[1] कालाराम मन्दिर सत्याग्रह में महिलाओं की सभा में बोलते हुए राधा बाई बड़ाले नामक एक सत्याग्राही ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा, 'हमे मंदिरों मे जाने का, पनघट से पानी पीने का, भरने का अधिकार मिलना चाहिए। यह हमारा सामाजिक हक हैं। शासन करने का राजनीतिक अधिकार भी हमें मिलना चाहिए। हम कठोर सज़ा की चिंता नहीं करतीं। हम देश भर की जेलों को भर देंगे। हम

*अतिथि विद्वान, इतिहास विभाग, शासकीय छत्रशाल महाविद्यालय, पिछोर, शिवपुरी, मध्य प्रदेश

**सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय महाविद्यालय, रेहटी, रायसेन, मध्य प्रदेश

लाठी–गोली खाँएगें। हमें हमारा हक चाहिए। गुलामी की जिंदगीं से मृत्यु बेहतर है। हम अपनी जान दे देगें मगर अधिकार छीन कर रहेगें।[2] कालाराम मन्दिर प्रवेश आंदोलन में रमाबाई अम्बेडकर, सीताबाई, गीताबाई गायकवाड़, रमाबाई जाधव, तुलसी रामजीकाले की माताजी, अमृतराव शरण खाबें की माताजी सो. ताराबाई यमु बाई, भिकूबाई सुमना राव, ठकूबाई सालवे, सरुबाई भालेराव, फुदाबाई धनाजी दाणी, गंगूबाई पगारे ओर अनेक अनाम अज्ञात औरतों ने भाग लिया जिसमें अंततः डॉ. अम्बेडकर और उनकी महिला साथियों की जीत हुई। 1930 में ही बाबा साहब ने नागपुर में 'अखिल भारतीय शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' की स्थापना के साथ ही 'दलित महिला परिषद' भी आयोजित की। इस सभा में दस हजार से अधिक महिलाओं ने भाग लिया। इस सभा की अध्यक्षा सुलोचना ठोगरे तथा स्वगताध्यक्ष कीर्ति पाटिल और मुख्य सचिव इन्दिरा पाटिल थी यह सभा अत्यन्त सफल रही। नागपुर में 8 से 10 अगस्त 1930 में अखिल भारतीय दलित कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में दलित महिलाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए जाईबाई चौधरी ने कहा, ''लड़कियों को भी लड़कों के समान पढ़ने के पूरे–पूरे अवसर उपलब्ध कराने चाहिए। एक लड़की की शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है।''[3] कांग्रेस के इस पहले अधिवेशन के दौरान ही सगुणाबाई गावेकर की अध्यक्षता में दलित महिला परिषद का आयोजन हुआ जिसमें दलित महिलाओं की शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया। जहाँ अभी तक दलित महिला आंदोलन शिक्षा, अस्पृश्यता, मन्दिर व पानी के सवालों पर जूझता हुआ आगे बढ़ रहा था वहीं उसने सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों को आपस में जोड़कर समस्या की तह में घुसने की भरपूर कोशिश की जा रही थी। जब ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया तब सरकार द्वारा कांग्रेस पर प्रतिबंध उठाने के मुद्दे को लेकर 30 दिसम्बर 1933 में नागपुर महार–माँग समाज की सभा में एक महार विधवा महिला ने सरकार के इस अन्याय और अलोकतांत्रिक कदम का घोर विरोध किया। कहने का तात्पर्य यह है कि दलित महिलाओं में तेजी से सामाजिक और राजनीतिक जागरुकता आ रहीं थी और वे उन पर सवाल भी खड़े कर रहीं थीं।

30 दिसम्बर 1933 नागपुर में राष्ट्रीय सामाजिक परिषद में अस्पृश्यता और अस्पृश्यता निवारण' विषय पर गोष्ठी में कृष्ण बोस जैसे राष्ट्रीय नेता भी उपस्थित थे। इस सभा में वेणुबाई भटकर ने जाति प्रथा की विडम्बना पर भाषण देते हुए कहा, ''मै वैसे तो अनपढ़ हूँ लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि जब

तक अस्पृश्यों को स्पृश्य नहीं किया जाता तब तक स्वराज मिलना कठिन है। स्कूल में लड़की के जात ही पूछा जाता है कि आप कौन है? ज्यों ही महार कहा जाता है तो अनर्थ हो जाता है। यह स्थिति नागपुर में महारों को हाजरी देनी पड़ती है। गाँव में तो महारों की स्थिति और भी बदतर है गाँव के पटेल का मतलब है हर औरत का खसम। ऐसी स्थिति में महार कैसे जिंदा रहें? कैसे अपना स्वाभिमान रखें ? मै नर्स हूँ पर मुझे क्रिश्चियन होने को कहा जाता है और क्रिश्चियन होने पर ही नौकरी मिलेगी, ऐसा कहते हैं। जात–पात छोडूंगी नहीं। नाम चुराना, यह बात मैं बिल्कुल नहीं करुँगीं। मै जात में रहकर जात को सुधारना चाहूंगी। उसके लिए मै जी–जान से प्रयत्न करुँगी।''[4] वेणुबाई भटकर सक्रिय दलित कार्यकर्ता थीं। वह बाबा साहब की अधिकांश सभाओं में उपस्थित रहती थीं। वह अत्यन्त स्वाभिमानी और दलित गरिमा से पूर्ण दलित महिला आंदोलन के इतिहास का एक चमकता सितारा थीं।

6 अप्रैल 1934 में मुंबई के बोरगांव जिला वर्धा में 'अस्पृश्य परिषद' सम्पन्न हुई। इस परिषद की खासियत थी कि इसकी अध्यक्षता दलित कार्यकर्ता सौ. सुमद्रा बाई ने की तथा इस परिषद में विस्तार से स्त्री–शिक्षण सुविधा और दलित समाज में लड़कियों को शिक्षित करने के पर उन्हें अल्पायु में ब्याह देने की कुप्रथा पर चिंता प्रकट की गई। इस सभा में शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए लड़के–लड़कियों के लिए वाचनालय, डिबेटिंग क्लब, क्लब, रात्रि कक्षाओं की सुविधा उपलब्ध कराने के साथ–साथ दलित छात्र–छात्राओं को भाषण, लेख आदि लिखने की प्रेरणा देने के साथ पुरस्कार व स्कॉलरशिप आदि की व्यवस्था कर शिक्षा को आगे बढ़ाने के महत्व की पुरजोर वकालत की गई। दलित बालिकाओं की शिक्षा में चिंताजनक स्थिति को मद्देनज़र रखते हुए पुनः 1935 में बोरगाव वर्धा में अस्पृश्य के द्वारा आयोजित सभा मे दलित बच्चियों की पढ़ाई पर ध्यान देने के लिए विशेष प्रस्ताव पारित किया गया। इस सभा की अध्यक्षता इस बार श्रीमती कमलाबाई ने की ।

16 जून 1936 में धर्म परिवर्तन पर व्याख्यानों की श्रृंखला में बम्बई के दामोदर हाल में बाबा साहब के व्याख्यान को सुनने के लिए लोगों का हुजूम उमड़ पड़ा। इस सभा में काफी संख्या में जोगिनों और वेश्याओं ने भी भाग लिया। वे भी हिन्दू धर्म की गंदगी और गजालत से मुक्ति की इच्छुक थी। डॉ. अम्बेडकर ने उनसे स्वेच्छा से स्त्री–मुक्ति आंदोलन में जुड़ने की अपील की। डॉ. अम्बेडकर ने कहा, ''अपनी ''गृहणी अच्छे परिवार से

आएं आशा सभी रखते हैं किन्तु जब तक उनके लिए स्वस्थ परिवारों का निर्माण नहीं होगा तब तक अच्छी गृहणी का निर्माण नहीं होगा। नारी की उन्नति के साथ ही परिवार की उन्नति का प्रश्न जुड़ा हुआ है। अतः नारी के महत्व को स्वीकारा जाना चाहिए।'' इस सभा में बाबा साहब ने जोगिनों और वेश्याओं को साफ–सुथरी जिंदगी गुजारन की प्रेरणा दी। बाबा साहब ने जोगिनों और वेश्याओं को साफ–सुथरी जिंदगी गुजारने की प्रेरणा दी। बाबा साहब की प्रेरणा से कई दलित संगठनों ने अनेक जोगिनों और वेश्याओं के सामूहिक विवाह संपन्न कर उनके परिवार बसाये।

1936 में ही अम्बेडकर के पुंरदरे हॉल में आयोजित महार परिषद में दिया गया भागीरथी ताई और कुमारी रमाबाई का भाषण बताता है कि दलित महिलाओं का नजरिया अत्यंत प्रगतिशील, स्वतंत्र और निर्भीक था। वे सामाजिक कुरीतियों के साथ–साथ परिवार में व्याप्त पितृसत्तात्मक जनित कुरीतियों के खिलाफ़ लड़ती हुई दोहरे मोर्चे पर जगं लड़ रहीं थीं। उन्होंने बाबा साहब के धर्मांतरण की घोषणा का खुले दिल से स्वागत करते हुए उनसे अपील की कि नए धर्म का चयन करते समय उस धर्म में स्त्री–मुक्ति का संदेश निहित हो, इसका विशेष रुप से ध्यान रखा जाए।[5]

lUnHkZ %

1. फड़के पं, कृत कालाराम मंदिर सत्याग्रह
2. मेघावाल, डॉ. कुसुम; डॉ. अम्बेडकर और महिला जागरण, पृ. 91
3. डॉ. अम्बेडकर; भारतीय नारी के उद्धारक, पृ. 91
4. उर्मिला पवार एवं मिनाक्षी मून; आम्ही इतिहास घड़वला
5. सिंह, तेज (सं0). 2008;अम्बेडकरवादी विचारधार और समाज, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 220

****

fgUnh lkfgR; e ukjhoknh foe’k

MkŒ l/kk f=ikBh*

समकालीन हिन्दी साहित्य में नारीवादी विमर्श चर्चा के केन्द्र में हैं। नारीवाद के अनुसार प्रत्येक सिद्धान्तकार एवं चिन्तक अपने–आप में एक सक्रिय कार्यकर्ता है। बिना सक्रियता के सिद्धान्त भी नहीं बनाये जा सकते। सिद्धान्त संबंधी चर्चाओं को एक कार्यकर्ता के दृष्टिकोण से भी तौला जाना चाहिए ताकि अलगाव एवं अमूर्तन की स्थितियों से बचा जा सके। एक सवाल यह भी है कि आर्य ग्रन्थों को कितनी प्रतिशत स्त्रियाँ समझ पायेंगी? अंग्रेजी तो वे शायद फिर भी समझ लेंगी मगर संस्कृत के श्लोकों, सूक्तियों और उद्गारों को पढ़ने से स्त्री को क्या लाभ होगा? ब्राह्मणवादियों के विराटत्व की चर्चा सुनकर स्त्रियाँ यह भी सोचने को बाध्य हो सकती हैं कि क्या उस समय कोई भी आम स्त्री नहीं थी? संघर्षरत दलित स्त्री या किसी संघर्षरत आम स्त्री की भी तो आकांक्षा हो सकती थी कि घर–गृहस्थी और खेत–खलिहानों की कमरतोड़ मेहनत के बदले वह भी राजकुमारी घोषा की तरह ‘सत्यम् शिवम् सुन्दरम्’ का वर्णन करे। शास्त्रों को समझने का प्रयास करे और लोक भाषा के बदले संस्कृत में बोले। सवर्ण सत्ता ने तो उन्हें यह सुविधा दी ही नहीं, वे तो अमंत्रवती और अशीक्षित ही रह गयीं।

कात्यायनी के अनुसार ‘जरूरत यह है कि नारीवादी लेखिकाएँ उन स्त्रियों के बारे में चर्चा उठाए जिन्हें शिक्षा–दीक्षा दोनों से वंचित रखा गया। मठाधीश पुरुष रहे और सेविकाएँ स्त्रियाँ। याज्ञिक वे रहे और यज्ञ की लकड़ी बीननें का काम स्त्रियों ने किया। एक पत्नी के मरते ही दूसरी पत्नी की उन्हें जरूरत थी अन्यथा यज्ञशाला को कौन साफ–सुथरा रखता। कहीं किसी भोजपत्र पर तो लिखा होगा उनका वह अधूरा अनकहा वाक्य जिसे पितृसत्तात्मक इतिहास ने उच्चारित करना तो दूर उसे लोक–स्मृति से एक दम ही मिटाकर रख दिया। ऐसा नहीं कि ये दलित स्त्रियाँ आज हैं और उस समय नहीं थीं। वर्ण व्यवस्था तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था की देन है। यह एक

*3/8 द्वितीय तल, उत्तर की तरफ, इन्दिरा विकास कालोनी, मुखर्जी नगर, दिल्ली

बड़ी प्राचीन व्यवस्था है। ये संवर्ण और संस्थाएँ पहले ही हिन्दू पितृसत्ता की अभिव्यक्ति के रूप में मौजूद थी। केवल राजकुमारियों का इतिहास जानकर क्या होगा? हमारे पास ब्रह्मवादियों का इतिहास है। सीता, सावित्री हमारे पास हैं (परम्परा हैं) लेकिन कहा और कब तक इनका गुणगान और महिमा–मंडन किया जाये। जिसे हम जातीय स्मृति का इतिहास कहते और समझते हैं उसे एक दलित स्त्री की स्मृतियों से क्यों नहीं जोड़ा जाता? इतिहास तो उनका लिखा जाना चाहिए जिन्होंने परम्परा के दलदल से निकलने की चेष्टा की है। कोई भी समकालीन स्त्री अतीत के उन उदाहरणों से प्रेरणा नहीं चाहेगी जिन्हें पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति की है। स्त्रियों की आने वाली पीढ़ी को सबसे अधिक इन मिथकीय दबावों के प्रति सजग रहना चाहिए। ये सत्ता के वे दबाव हैं जो नए–नए रूप बदलकर हमें लुभाने की कोशिश करते हैं। स्त्री इसे जितना समझेगी उतना ही अधिक अपने भीतर धीरे–धीरे एक ठण्डे क्रोध को सुलगता हुआ पायेगी। परम्परा के खिलाफ उद्दण्ड होने की बजाय विनम्र होना चाहिए। पर विनम्रता का यह अर्थ नहीं है कि जिस परम्परा ने स्त्री का दोहन किया उसका ही महिमा मंडन किया जाए और ब्राह्मणी संस्कृति के जूठन के रूप में स्त्री विरोधी पुराण गाथाओं, स्मृतियों के श्लोकों की नई–नई व्याख्याएँ परोसी जाए। नारीवाद जैसी आधुनिक अवधारणा को अतीतोन्मुखी करने की चेष्टा आत्मघाती होगा। हमारे पुराण स्त्री–मुक्ति का कोई उदाहरण हमारे सामने नहीं रखते। सीता और सावित्री की चर्चा करते हुए लेखिका अघाती नहीं। अच्छा होता कि लेखिका की सशक्त लेखनी माधवी की व्यथा पर भी कुछ कहती। माधवी गॉलव ऋषि के हाथों पण्य की तरह बिकती रही। सत्ता के लोभ ने उसे पण्य में बदलकर रख दिया। अच्छा होता स्त्री अपने पूरे कद के साथ कह सकती कि हाँ हमारे साथ अत्याचार हुआ है। हमारा शोषण हुआ है और आज भी हो रहा है। उपनिवेशीकरण के दौर में जहाँ स्त्री बाहरी ताकतों से शोषित थीं, वहीं आज अपने ही घर में अपने कहे जाने वाले भाइयों और बंधुओं से उपेक्षित और दमित हैं। कहाँ हैं वे नारीवादी फोरम, राजनीतिक पार्टियाँ और संस्थाएँ तथा मंच जो एक आम स्त्री की न्याय की भाषा को सामने लाने की जिम्मेदारी निभायेंगे?[1]

कात्यायनी स्त्री की समस्याओं को व्यर्थ के सिद्धान्तीकरण में उलझाकर रखना सत्ता, शास्त्र और अकादमियों की चाल मानती हैं।

उनके अनुसार 'बेहतर यह होगा कि आने वाले समय में छोटे–छोटे गुट बनाए जायें। कुछ आपसी समझौते किए जाएँ और उन गुटों की नेटवर्किंग करके एक बड़ी लड़ाई लड़ी जाए। छोटी–छोटी संस्थाओं और दलगत राजनीति में अपने–अपने दृष्टिकोण और स्वार्थों के साथ किसी एक समग्र नीति या विचारधारा को अपनाने की प्रवृत्ति हो सकती है, लेकिन हम में से प्रत्येक समूह या व्यक्ति अपने से भिन्न समूह और व्यक्ति को संसाधन की तरह प्रयुक्त अवश्य कर सकता है। स्त्रियाँ इस लायक तो हो ही सकती हैं कि एक–दूसरे के सहयोग से अपनी मंजिल पा सकें।[2] अनामिका के अनुसार इन पारम्परिक रेखाओं को मिटाना आसान नहीं है लेकिन स्त्री को इससे भयभीत होने के बदले इनका सामना करना चाहिए और इन्हें समझना चाहिए। उन सीमाओं को लाँघना होगा जिनका सामना रोजमर्रा की जिन्दगी से होता है। दो व्यक्तियों की भिन्नता के बीच भी एक गुंजाइश होती है और इस गुंजाइश की अपनी अनंत सम्भावनाएँ हैं। इन्हें समझना और समेट कर चलना एक कठिन कार्य है लेकिन यही कार्य करने योग्य है।[3]

उस संदर्भ में हम नारी विमर्श से सम्बंधित हिंदी के कथा साहित्य को देखें तो पाएंगे कि 'वाना' कथा–स्थितियों की नियंता उसी तरह नहीं है जैसे रूढ़िवादी परिवार की 'छिन्नमस्ता' की प्रिया, 'चाँद' की वर्षा वशिष्ठ या 'आवां' की नमिता पाण्डे हैं, वह सिर्फ अपने संस्कारों, पति के प्रति कर्त्तव्यों के द्वन्द्वों में ढलती जाती हैं। बल्कि कहना चाहिए कि राहुल की तरफ लुढ़कती जाती हैं। इन चारों ही नायिकाओं में जो सबसे आकर्षक तत्व है, वह है निजी आकांक्षाओं और स्थितियों के द्वन्द्व या अपने निर्णयों के बीच व्यक्तित्वों का रूपान्तरण। यह रूपान्तरण वर्षा वशिष्ठ की इकहरी महत्वाकांक्षाओं के मुकाबले प्रिया के जड़ मारवाड़ी परिवार और नमिता पाण्डे के व्यापक सामाजिक सन्दर्भों या वाना के अमेरिकन परिवेश के बीच पारिवारिक समीकरणों में कहीं अधिक विश्वसनीय है। चारों ही उस विकसित चेतना तक पहुँच गई हैं जहाँ अपनी जिन्दगी के निर्णय वे अपने विवेक से ले सकें। चारों के लिए पुरुष जरूरी है मगर ऐसे अनिवार्य नहीं हैं कि अपने होने को सिर्फ उसी के माध्यम से परिभाषित कर दिया जाए। संस्कार, सेक्स, सम्पत्ति या कैरियर किसी के लिए पुरुष की रजामंदी वहाँ जरूरी नहीं है। चाहें स्त्री–मुक्ति का एक निर्णायक पड़ाव कह लें। मृदुला गर्ग जिन स्थितियों को

बौद्धिक विमर्श से प्राप्त करना चाहती हैं, वह ये चारों अपने अनुभव–सत्यों से गुजर कर अर्जित करती हैं। नासिरा शर्मा के उपन्यासों की नायिकाएँ तो अपने तथाकथित विद्रोही फैसलों के नाम पर ही वापस पिंजरों में लौट आती हैं, लेकिन शहरी मध्य–वर्ग ही भारतीय समाज नहीं है। गाँव, देहात में फैला जमीन से जुड़ा वह फणीश्वरनाथ रेणु 'मैला आँचल' भी है जहाँ स्त्री इस मुक्ति को अपने परिवेश और मुहावरों में पा रही है। यानी हिन्दी उपन्यास का नायक सिर्फ 'शेखर' ही नहीं, 'होरी' भी है। नायिका सिर्फ रेखा ही नहीं, धनिया भी है। कथाकार राजेन्द्र यादव कहते हैं, 'मुझे आश्चर्य नहीं है कि प्रेमचन्द और रेणु के बावजूद हिन्दी का मध्यवर्गीय शहरी समीक्षक होरी और धनिया या कमली की परम्परा को उस निर्विरोध सहजता से स्वीकार नहीं कर पा रहा जिससे शेखर–रेखा की कथाओं को कर लेता है। न वहाँ बौद्धिक–विमर्श हैं न वैसा वैचारिक तेवर। गाँव की इन कहानियों में न दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता से लेकर न्यूयार्क तक का भौगोलिक विस्तार है, न रैट–रेस के वैसे स्नायविक तनाव। वहाँ गाँव भी चाहिए जो ऐसा धुला–पुंछा कि दीवार में जड़ी खिड़की या तस्वीर लगे और अनायास मुँह से निकल पड़े 'हाउ ब्यूटीफुल' – वहाँ इतिहास भी चाहिए जो बाई पास से गुजरा हुआ ऐसा कटा–छँटा कैप्सूलबद्ध, जहाँ धूल–धक्कड़ और पीली आँधियों का कहीं कोई गुजर न हो...। घरों, ड्राइंग रूमों में सजायी गयी एथ्निक कलाकृतियों की सुरूचि के साथ।[4]

स्त्रीत्ववादी विमर्श ने स्त्री–मुक्ति के प्रश्नों को विभिन्न दृष्टिकोणों से उठाया है। यही कारण है कि इस विमर्श में दैहिक प्रश्नों पर स्त्री होते हुए स्त्री दृष्टि से पहली बार विचार किया जा रहा है। क्योंकि उनका सर्वाधिक उत्पीड़न देह के स्तर पर ही हो रहा हैं ऐसे प्रश्नों ने पितृसत्तात्मक समाज में काफी उथल–पुथल मचा दी है। सबसे पहला प्रश्न तो यह है कि क्या स्त्री की देह पुरुष की निजी मिल्कियत है? देह की पवित्रता, शील, मर्यादा, नैतिकता होना स्त्री के लिए ही क्यों जरूरी है? इस प्रसंग में श्री राजेन्द्र यादव प्रकाश डालते हैं 'जाहिर है कि पुरुष वर्चस्व के इस समाज में पुरुषों ने स्त्रियों को अपने अनुशासन में रखने के लिए ही ऐसा किया, ताकि वह मर्यादा में जकड़ी रहे। वह ऐसे प्रश्नों पर स्वतंत्रता पूर्वक सोच न सके। पुरुष लेखक, कलाकार स्त्री को चाहे जिस रूप में क्यों न चित्रित करे लेकिन स्त्रियाँ अगर ऐसी स्वतंत्रता लें तो भारी हंगामा मच

जायेगा अर्थात् स्त्री लेखन, कलाकर्म पितृसत्तात्मक जंजीरों में बुरी तरह से जकड़ा हुआ है जिसे तोड़ने का साहस इन शील और मर्यादा की आदर्श नारियों के पास नहीं है। वे उन पितृसत्तात्मक नियमों, अनुशासनों, सिद्धान्तों को तोड़ना नहीं चाहती, क्योंकि इससे उनके सामाजिक सम्मान को चोट पहुँचती है। इसीलिए सदियों से स्त्री को लज्जालु, सहनशील, समर्पणशील एवं मर्यादा में रहना सिखाया जाता है।'

जिस देश के अन्दर नैतिकता लिंग केन्द्रित हो, वहाँ स्त्री के साथ न्याय होना असम्भव है। यह समाज के दोहरे नैतिकतावादी पितृक मापदण्ड हैं जिनके द्वारा किसी भी लड़की को उसकी औकात समझा दी जाती है। सामाजिक चरित्र स्त्रियों से सदैव इसी प्रकार के नैतिक चरित्र की माँग करती है। सामाजिक सम्मान उन्हें तभी मिल सकता है यदि वे पूरी निष्ठा से पितृक यौनाचरण का अनुकरण करके अपनी परम्परागत स्थिति को मजबूत करती है। सामंतवाद इसी प्रकार शील, ममता, स्त्रीत्व को पसन्द करता है। श्री यादव के अनुसार 'जो भी स्त्रियाँ यौनाचरण में स्वतंत्रता लेती हैं कि उसका उपभोग किसे करना है, उन्हें चरित्रहीन, मर्यादाहीन, अनैतिक, संस्कारहीन कहकर गोली मार दी जाती है, किसी तालाब में फेंक दिया जाता है या फिर जिन्दा दफना दिया जाता है। किसी भी स्त्री पर ऐसा आरोप लगाकर उसे तलाक दे दिया जाता है। सामंतवाद तो क्या इस उत्तर आधुनिक परिदृश्य में भी नैतिकता के मापदण्ड दोहरे हैं। उसे पितृक यौनाचरण के नियमों का पालन करना पड़ता है। इसका अर्थ पूर्णतया स्पष्ट है कि अभी भी स्त्रियों ने पितृसत्तात्मक वर्चस्व को आत्मसात् किया हुआ है। लिंग नैतिकता को समझने में वे असमर्थ रही हैं। इसलिए ऐसे प्रश्नों पर खुलकर स्त्रीत्ववादी दृष्टिकोण से विचार नहीं हो रहा है। खुद स्त्रियाँ ऐसे प्रश्नों पर विचार करना नहीं चाहती। जाहिर सी बात है कि इस समाज में अपने देह की स्वतंत्रता का चुनाव स्त्री को नहीं दिया जाएगा। उसे कहाँ, कितनी छूट देनी है यह चुनाव भी पुरुष ही करेगा। स्त्री भी इसे जानती है कि पुरुष वर्चस्व वाले समाज में सम्मान और सुरक्षा पानी है तो इस चुनाव की बात नहीं करती है, इसलिए बड़ी से बड़ी प्रबुद्ध महिला को यही कहना पड़ता है कि स्त्री मुक्ति का अर्थ सैक्स की स्वच्छन्दता नहीं है। यही है भारतीय प्रबुद्ध महिलाओं का मर्यादावादी, संस्कारशील चिन्तन जिसमें निहित है सांस्कृतिक वर्चस्ववाद के अन्तर्विरोध, जिसने स्त्री की सोच को

अनुकूलित किया हुआ है। पति भले नपुंसक, बर्बर, हिंसक हो, लेकिन उसे हर–हालत में ताउम्र जीना–मरना पड़ता है।[5]

इस पितृ समाज में पुरुषों के पास स्त्रियों की देह को भोगने का पूरा अधिकार है। वह जब चाहे किसी भी स्त्री से सम्बन्ध बना सकता है। वह पूरी तरह से स्वतंत्र है, अपनी पत्नी को साथ रखने या तलाक देने के लिए। उसके लिए स्त्री एक देह के आगे कुछ भी नहीं है। यही धारणा हजारों वर्षों से भारतीय वर्चस्व के मूल में रही है। कोई भी स्त्री समाज में कितनी भी प्रतिभा सम्पन्न, उच्च पदों वाली हो, लेकिन इसके साथ यदि वह पितृक नैतिकता का बहिष्कार करती है तो उसको सामाजिक अपमान झेलने पड़ते हैं। मातृसत्तात्मक समाज में स्त्रियाँ पूरी तरह से स्वतंत्र थीं। उन्हें अपने दैहिक प्रश्नों पर खुद विचार करना पड़ता था। वह किससे सम्बन्ध बना सकती थीं किससे नहीं, यह उनके हाथ में था। प्रेम, सैक्स, मर्यादा के प्रश्न पहले नहीं थे लेकिन पितृक समाज में ये नियम पूर्ण रूपेण लागू कर दिए गये। पुरुषों ने स्त्रियों पर अपना पूरा अधिकार स्थापित कर लिया। उनकी देह पुरुषों की मिल्कियत बन गयी। उसे अब पुरुष निर्मित मर्यादाओं, नैतिकताओं, अनुशासन का अनुकरण करना था। स्त्रियाँ इन पितृसत्तात्मक अनुशासन, मर्यादा का दृढ़ता पूर्वक निर्वाह कर रही हैं।

lUnHkZ %

1. कात्यायनी; दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ0 81।
2. कात्यायनी; दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ0 81।
3. स्त्रीत्व का मानचित्र – अनामिका, पृ0 67।
4. यादव, राजेन्द्र; मेरी तेरी उसकी बात, दिसम्बर 2000, हंस, पृ0 7।
5. यादव, राजेन्द्र; मेरी तेरी उसकी बात, दिसम्बर 2000, हंस, पृ0 7।

****

Ukkjh foe'k vkj fir`lRrkEkd lekt

l/khj f=ikBh*

नारी विमर्श और पितृसत्तामक समाज के सम्बंध में 'हंस' में प्रकाशित एक लेख में श्री अरविंद जैन ने लिखा है कि 'आज यदि खुले बाजार, उपभोक्तावाद, मीडिया ने स्त्री देह को सार्वजनिक बनाकर उसे अपने व्यावसायिक तथा सांस्कृतिक हितों के लिए इस्तेमाल करना शुरू किया है तो पितृक समाज, सामंतवाद चिंतित है कि स्त्री–देह का व्यापार किया जाने लगा है। उसे यह पसंद नहीं है क्योंकि यह उसकी निजी मिल्कियत है जो खतरे में पड़ने लगी है।'[1] अतः जब तक स्त्री, लेखिकाएँ खुद इन प्रश्नों पर विचार नहीं करतीं, उसके प्रति जागरूक नहीं होतीं, तब तक देह के स्तर पर उनका भयंकर शोषण, उत्पीड़न बना रहेगा। जहाँ तक समाज के सांस्कृतिक पिछड़ेपन का सवाल है, उसे नकारा नहीं जा सकता। क्योंकि ऐसे तीखे प्रश्नों को उठाने वाली निर्भीक स्त्रियों पर व्यक्तिगत लांछन लगते हैं। उन्हें मर्यादाहीन, संस्कारहीन, चरित्रहीन कहा जाता है। ऐसी निर्भीक स्त्रियों का जीना हराम कर दिया जाता है। कृष्णा सोबती के सम्बन्ध में पितृक आलोचक ऐसा ही सोचते हैं। सोबती जी ने स्त्री–देह के प्रश्नों को जितनी बेबाकी, खुलेपन से उठाया है वह शायद ही कोई स्त्री उठा सकी हो। ऐसे प्रश्नों को उठाकर उन्होंने नारीवादी लेखिकाओं में अपनी एक अलग पहचान कायम की है। तसलीमा नसरीन भी इन्हीं प्रश्नों को उठाकर प्रताड़ित हुई हैं। पुरुष समीक्षकों ने तो इन प्रश्नों को लेखिका का पर्सनल विषय बताया है।[2] पितृक दृष्टि के लिए तो ऐसे मुद्दे भद्दे मजाक से भरे हुए मर्यादाहीन, संस्कारहीन, दिशाहीन हैं जो स्त्री को स्त्री नहीं रहने देंगे, जैसे इन प्रश्नों के सार्वजनिक होने से स्त्रियाँ भटक जायेंगी। स्त्रियाँ भटक नहीं जायेंगी बल्कि वे जाग जायेंगी कि आखिर देह के स्तर पर ही उन्हें सर्वाधिक क्यों

---

*प्रवक्ता, बी0एन0बी0 इण्टर कालेज, मडियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

कुचला जा रहा है? ऐसे प्रश्नों के उठने से पितृक समाज खुद को असुरक्षित महसूस करने लगा है क्योंकि पुरुष का दृष्टिकोण स्त्री के प्रति असंवेदनशील ही रहता है। इससे उसके पितृक अन्तर्विरोध, जीवन के दोहरे स्टैंडर्ड्स स्पष्ट होने लगते हैं। दरअसल अपने लिए पुरुष की कोई नैतिकता, मर्यादा, आदर्श का कोई अर्थ नहीं होता। सार्वजनिक मंचों, भाषणों, लेखन में वह उच्च आचरण नैतिकता का कितना ही ढोल क्यों न पीटता रहे, लेकिन वास्तविक जीवन में वह स्त्री के प्रति घोर निम्न स्तरीय आचरण का ही प्रमाण देता है। जब तक पुरुष के जीवन में अन्तर्विरोध नहीं मिटते, उनका लेखन कभी भी स्त्री के पक्ष में नहीं जा सकता। वह अपने बनाये हुए नैतिक सिद्धान्तों, मूल्यों के विरुद्ध ही काम करता है। स्त्री इसे अच्छी तरह से जानती है लेकिन उसका प्रतिरोध नहीं कर पाती। इस सम्बंध में कात्यायनी से हम सहमत हो सकते हैं कि 'पुरुष हमेशा स्त्री से अपने वर्चस्व के समक्ष समर्पण की स्वीकृति चाहता है कि औरत उसकी हर बात, हर इच्छा, आदेश का पालन करें। इसके विपरीत आचरण करने वाली सजग, चेतन स्त्री से वह जबर्दस्त घृणा करता है। उसको चरित्रहीन, मर्यादाहीन कहकर अपमानित करता है। स्त्रियों के पास वह संगठनात्मक शक्ति नहीं हैं कि वह उसके विरुद्ध संघर्ष कर सके।'[3]

साहित्य के समाज की स्त्री लेखिकाओं, चित्रकारों से लगभग ये अपेक्षाएँ रही हैं कि वे पितृक मर्यादाओं का ही अनुकरण करें, लेकिन जब से स्त्री विमर्श आया है इसने स्त्री के सोचने–विचारने, लिखने की शैली को ही प्रभावित नहीं किया, उनमें अपने स्वत्वाधिकारों के प्रति चेतना भी विकसित की है। उनके नजरिए को काफी हद तक बदला भी है, यही कारण है कि कविता हो या कहानी, उपन्यास, वैचारिक निबन्ध, कलाकृति उनमें उनकी तीखी आलोचनात्मक चेतना, नारीवादी सोच को साफ–साफ पहचाना जा सकता है। स्त्री–मुक्ति के सवालों पर जो विमर्श हो रहा है, वह स्त्री–जागृति द्वारा ही सम्भव हुआ है भले ही अभी तक अनेक मुद्दों को लेकर उनमें भी अन्तर्विरोध हैं, लेकिन साहित्य आलोचना, समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति, दर्शन कला आदि क्षेत्रों में स्त्रीत्ववादी विमर्श एक नई क्रान्ति है। स्त्री पाठ ने साहित्य अध्ययन के उन पुराने पितृक

मापदण्डों को बुरी तरह से ध्वस्त कर दिया है। कात्यायनी लिखती हैं कि 'जब एक स्त्री स्त्री होते हुए स्त्री–दृष्टि से विचारती है तो स्त्री–पाठ का जन्म होता है। एक चेतन, जागरूक स्त्री जब कबीर या तुलसीदास की नारी विरोधी पितृक समर्थक दोहे–चौपाई को पढ़ती है तो भारतीय वर्चस्व के मूल में स्त्री विरोधी सामन्तीय विचारधारा को समझने में देरी नहीं लगेगी कि किस प्रकार कबीर, तुलसी जैसे मानवीय संवेदनशील कवि भी पितृसत्तात्मक वर्चस्व से मुक्त नहीं हैं।'[4]

स्त्री–विमर्श पितृसत्ता के लिए सबसे गम्भीर चुनौती है क्योंकि वर्चस्ववाद के विरोध में ही इसका जन्म, विकास हो रहा है। आज तक स्त्री ने पितृक वर्चस्व को आत्मसात् किया हुआ था, वह उस प्रभुत्व द्वारा अनुकूलित, नियन्त्रित थी। स्त्री–विमर्श ने ही स्त्रियों के भीतर यह चेतना पैदा की कि उनको वाणी हीन, स्वत्वहीन क्यों किया जा रहा है? उनका स्वतंत्र अस्तित्व क्यों नहीं है? परिवार का अनुशासन उन्हें ही क्यों अनुशासित करता है? स्त्रियाँ आर्थिक धरातल पर आत्म निर्भर होकर भी परिवार में दबी कुचली क्यों हैं ? स्त्री–विमर्श में ऐसे असंख्य प्रश्न हैं जिसमें स्त्री–मुक्ति का संदेश छिपा है। अब स्त्री लेखिकाएँ अपने अस्तित्व, अस्मिता के बारे में सोचने लगी हैं। अपने शरीर पर अंकित असंख्य बेड़ियों के निशानों, घावों को भी वे पहचानने लगी हैं। जिस दिन स्त्रियाँ अपनी गुलामी की असंख्य, अदृश्य बेड़ियों, जंजीरों को पहचान लेंगी तो वह दिन भी दूर नहीं जब वे पितृक जकड़बंदी से मुक्त होकर अपने अधिकारों के बारे में सोचेंगी।

श्री अरविंद जैन के अनुसार 'पितृक समाज में पूँजी का उत्तराधिकारी पुत्र ही होता है। पूँजी उत्तराधिकार पर पुत्राधिकार ने स्त्री की सामाजिक स्थिति को बेहद अप्रासंगिक ही बना दिया है। सम्पत्ति का स्वामित्व, पूर्ण नियंत्रण पुरुषों के हाथों में रहने से स्त्री के लिए कोई जगह नहीं बचती है। स्त्री के पास धन नहीं होता कि वह अपने छीनते अधिकारों को पाने के लिए कानून की मदद ले सकें, संघर्ष कर सकें। कानून भी उन्हीं को सुरक्षा प्रदान करता है जिनके पास धन, पूँजी है। कानून की शरण में जाने के लिए पूँजी, धन चाहिए, लेकिन वंचित, स्त्रियों

के पास धन नहीं होता कि वे अमानवीय संसार के विरूद्ध कोई कानूनी लड़ाई लड़ सके और अपने अधिकारों को, सामाजिक स्थिति को बेहतर बना सकें। स्त्रियों में कहीं स्वत्वाधिकारों की चेतना न जागृति हो, वे अपने अस्तित्व के लिए जूझ न सकें, उन्हें आर्थिक दृष्टि से शक्तिहीन किया जाता है। पुरुष का आर्थिकता पर पूरा नियन्त्रण है, इसलिए वह शक्ति–सम्पन्न वर्ग है और स्त्री शक्तिहीन, असहाय, अभिशप्त।'[5] कानून विशेषज्ञ अरविन्द जैन का कहना सही है कि "जब तक पूँजी पर पुत्राधिकार बना रहेगा, तब तक नारी–मुक्ति, समानाधिकार, न्याय, स्वतंत्रता, सम्मान, पहचान या गरिमा का सपना साकार होना असम्भव है।[6]

दरअसल पितृसत्तात्मक वर्चस्व के स्थापित हो जाने से पुरुषों ने जो सबसे पहला काम किया वह था सम्पत्ति, पूँजी का उत्तराधिकारी अपने पुत्रों को बनाना। लड़कियों को सम्पत्ति में से बराबर का हिस्सा तो दूर, उन्हें मामूली सा भी हिस्सा न देना। इस प्रकार पुरुष की सम्पत्ति के उस उत्तराधिकारी उसके पितृक वंश के पुत्र हो गये। एंगेल्स ने स्पष्ट किया है – जैसे–जैसे सम्पत्ति बढ़ती चली गयी, वैसे–वैसे इसके कारण एक ओर तो परिवार के अन्दर नारी की तुलना में पुरुष का दर्जा ज्यादा महत्वपूर्ण होता गया, दूसरी ओर, पुरुष के मन में यह इच्छा जोर पकड़ती गयी कि अपनी मजबूत हो गयी स्थिति का लाभ उठाकर उत्तराधिकार की पुरानी प्रथा को उलट दिया जाये ताकि उसके अपने बच्चे हकदार हो सकें। परन्तु जब तक मातृ–अधिकार के अनुसार वंश चल रहा था, तब तक ऐसा करना असम्भव था। इसलिए आवश्यक था कि मातृ–अधिकार को उलट दिया जाये और ऐसा किया भी गया। इस प्रकार पितृक वंशानुक्रम तथा पितृक–उत्तराधिकार स्थापित हुआ।[7]

यहीं से शुरू होती है स्त्री उत्पीड़न और दमन की कहानी। स्त्री की नियति को निर्धारित करने वाली दूसरी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक शक्तियाँ हैं। पुरुष चाहे स्त्री पर हिंसा करे और चाहे प्रशंसा दोनों में उसका दृष्टिकोण छद्म (झूठा) है। कानून भी स्त्रियों के अधिकारों की सुरक्षा नहीं कर पाया है। सीमोन द बोउवा ने सही कहा है, "यदि कानून औरत को बराबरी का आधार दे भी दे तो सामाजिकता,

नैतिकता और लोक व्यवहार उसके आड़े आ जाते हैं। दूसरी बातों के समान रहने पर भी आर्थिक क्षेत्र में औरत और मर्द बिल्कुल अलग–अलग जाति के रूप में प्रस्तुत होते हैं। पुरुष को अच्छी नौकरी, बेहतर तनख्वाह और सफलता की ज्यादा सुविधाएँ मिलती हैं, उद्योग व्यवस्था और राजनीति में पुरुषों को ज्यादा ओहदे मिलते हैं और महत्वपूर्ण पदों पर उनका एकाधिकार भी रहता है। .... पुरुष के मन में इस जगत के प्रति कोई संदेह नहीं। उसकी स्थिति असुरक्षित नहीं। यह औरत की ही स्थिति है, जो अपना विश्लेषण माँगती है।

lUnHk %

1. जैन, अरविंद; उत्तराधिकार या पुत्राधिकार, जून 1988, हंस, पृ0 77।
2. जैन, अरविंद; उत्तराधिकार या पुत्राधिकार, जून 1988, हंस, पृ0 77।
3. कात्यायनी; दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ0 174।
4. कात्यायनी; दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ0 174।
5. उत्तराधिकार या पुत्राधिकार – अरविंद जैन, जून 1988, हंस, पृ0 78।
6. जैन, अरविंद; उत्तराधिकार या पुत्राधिकार, जून 1988, हंस, पृ078
7. एंगेल्स; परिवार : निजी सम्पत्ति, राज्य की उत्पत्ति, पृ0 67।

****

ckfydkvksa dh f'k{kk % ,d v/;;u

MkW0 lq'khy dqekj xqIrk*

बालिका केवल परिवार की निर्मात्री ही नहीं, अपितु इतिहास साक्षी है कि वह अपनी विलक्षण प्रतिभा, बुद्धि व त्याग से राष्ट्र निर्माण में अहम भूमिका निभाई है, जिससे सभ्यता व संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार हुआ। डा0 राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में –''राष्ट्र की प्रगति व सामाजिक स्वतंत्रता में महिलाओं की अहम भूमिका हैं जिससे सभ्यता का संरक्षण एवं प्रसार हुआ। सभ्यता के उदय से ही मनुष्य के लिए मनुष्य का विकास करना ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य रहा है। यह कार्य निरन्तर बालिकाओं के द्वारा ही होता आया है। बालिकाएं ही प्राचीन धरोहर को अगली पीढ़ी तक पहुँचाती है तथा वे ही परिवार व समाज में इस विरासत को सुरक्षित रखती है।''[1]

जब राजनैतिक व धार्मिक संस्थाएँ नहीं थीं तब भी सामाजिक परम्पराओं को सुरक्षित व संरक्षित रखने का कार्य लड़कियाँ ही करती थी। यदि वे भूत, वर्तमान और भविष्य को परस्पर सम्बन्धित करने का कार्य नहीं करतीं तो आज न तो कोई सभ्यता होती और न ही कोई इतिहास।

बालिकाओं की स्थिति ही किसी राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक प्रगति का सूचक है। बालिकाओं का योगदान शिक्षा से निर्धारित होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि विकसित राष्ट्रों में महिलाओं की शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा है जबकि वास्तविकता यह है कि बालिकाओं की शिक्षा का स्तर ऊँचा होने के कारण ही वे राष्ट्र विकसित हैं। भारत की साक्षरता दर के आधार पर यह स्पष्ट है कि बालिकाओं की शिक्षा में सभी स्तर तथा सभी क्षेत्रों में अन्तर है। प्रत्येक क्षेत्र में बालिकाएं, बालकों की अपेक्षा शिक्षा की दृष्टि से बहुत अधिक पिछड़ी है। हमने सरस्वती को विद्या की देवी माना है किन्तु विडम्बना यह है कि बालिकाएं ही शिक्षा से वंचित है। बालिकाओं की शिक्षा के साथ दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह है कि पिता, भाई या शिक्षक नहीं वरन् स्वयं उनकी माता ही उनका विरोध करती है। इसका प्रमुख कारण घर के कार्यों मे उनका पूर्ण सहयोग

*असि0 प्रो0, बीएड विभाग, आर0एस0के0डी0 पी0जी0 कालेज, जौनपुर, उ0प्र0

लेने का लोभ है। प्रायः अशिक्षित मातायें ही शिक्षा का विरोध करती है। विश्व बैंक के एक अध्ययन (1991) से यह तथ्य उजागर हुआ है कि बालिका को शिक्षित करना कोई दया या दान नही है और यदि विकासशील देश निर्धनता को दूर करना चाहते है तो उन्हें बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करना चाहिए। बालिकाओं की शिक्षा पर किए गये विनियोजन का आर्थिक व सामाजिक लाभ बालकों की शिक्षा पर किये गये विनियोजन से अधिक है। शिक्षित बालिकाओं को रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं तथा वयस्क होने पर वह अधिक उत्पादक हो जाती है। जबकि शिक्षा व रोजगार प्राप्त करके वह और अधिक उत्पादक हो जाती हैं तथा छोटा परिवार अधिक पसंद करती है। वह बच्चों के स्वास्थ्य योजना व शिक्षा के प्रति अधिक जागरूक व प्रयासरत रहती है।[1] अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि बालिकाओं की शिक्षा से विकासशील राष्ट्रों को निर्धनता, जनसंख्या वृद्धि, कुपोषण व स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने में सहायता प्राप्त होती है। विश्व बैंक का यह अध्ययन भारत पर अक्षरशः लागू होता है। यहॉ केवल केरल ही एक ऐसा प्रान्त है जहाँ शत–प्रतिशत साक्षरता है। यहाँ विवाह के समय बालिकाओं की औसत आयु 22 वर्ष होती है। प्रायः बालिकाओं का विवाह 20–24 वर्ष की आयु में होती है। इसके विपरीत बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, आदि राज्यों में महिला साक्षरता दर निम्न हैं। इन राज्यों की जनसंख्या पूरे देश की जनसंख्या का 40 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश में विवाह के समय बालिका की औसत आयु 19 वर्ष होती है जबकि कुछ बालिकाओं का विवाह 14 वर्ष से भी कम आयु में हो जाता है यहाँ स्वास्थ्य दशाओं का स्तर अपेक्षाकृत निम्न है तथा जन्म दर, मृत्यु दर, जनसंख्या वृद्धि दर आदि सभी राष्ट्रीय दर से ऊपर है। इस प्रकार राष्ट्र की विकराल समस्या, जनसंख्या की तीव्र वृद्धि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध बालिकाओं की शिक्षा से है। शिक्षित महिलाएं सीमित परिवार, स्वस्थ परिवार, शिक्षित परिवार व लिंग समानता पर विश्वास रखती है। विश्व बैंक ने यह स्पष्ट किया है कि बालिकाओं की शिक्षा की नितान्त आवश्यकता होते हुए भी अनेक विकासशील राष्ट्रों ने बालिकाओं को बालकों की अपेक्षा शिक्षा की कम सुविधाएँ व कम अवसर प्राप्त करायें हैं। अध्ययन में इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला गया है कि यदि इन देशों की सरकार राष्ट्र की विकास दर में वृद्धि चाहती है तथा जनसंख्या वृद्धि दर को कम करना चाहती हैं तो उन्हें चाहिए कि वे अभिभावकों द्वारा

बालिकाओं को विद्यालय भेजने की क्रिया को सहज बनाएं एवं इसके लिए आवश्यक हो तो विद्यालय रियायतें भी दे सकते है।

हमारे यहाँ बालिकाओं की शिक्षा के महत्व को समझा जाने लगा है। महात्मा गाँधी ने राष्ट्र के विकास में बालिकाओं की भूमिका को अहम मानते हुए कहा कि ''यदि आप एक लड़के को पढ़ाते हैं, तो आप एक व्यक्ति को शिक्षित करते हैं परन्तु जब आप एक बालिका को शिक्षित करते हैं तो वस्तुतः एक पूरे परिवार को शिक्षित करते हैं।''

शिक्षा में सुधार के लिए शिक्षा आयोग (1964–66) का विचार था कि हमारे मानव संसाधन के विकास के लिए, परिवार की समृद्धि के लिए तथा शैशवावस्था के काल में अत्यधिक सरलता से प्रभावित होने वाले बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए बालिकाओं की शिक्षा का महत्व बालकों की शिक्षा से भी अधिक है।

बालक का भविष्य सदैव उसके माता द्वारा निर्मित होता है तथा बचपन के पाँच वर्ष उसके व्यक्तित्व विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। इस अवधि में माता–पिता द्वारा उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाता है इसका प्रभाव उसमें निर्मित होने वाले शील गुणों पर पड़ता है। चूँकि इस अवस्था में बालक अपने माता के सम्पर्क में अधिक रहते हैं, अतः एक शिक्षित माता अपने बच्चों के व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। वह अपने बच्चों में करूणा, प्रेम, दया तथा सहानुभूति के भावों को विकसित करते हुए उनके मानसिक स्वास्थ्य को सही दिशा में विकसित कर सकती है।[2]

अतः एक बालिका को शिक्षित करने का अर्थ एक माता को शिक्षित करने से होता है। जिसके बदले में वह राष्ट्र को योग्य नागरिक प्रदान करती है।

राधा कृष्णन आयोग ने कहा है– ''यदि सामान्य शिक्षा स्त्री या पुरूष में से किसी एक तक ही सीमित रखनी हो तो वह शिक्षा स्त्रियों को देनी चाहिए।

उपर्युक्त कथनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालिकाओं के लिए शिक्षा अति आवश्यक है। इससे बालिकाएँ अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए राष्ट्र की उन्नति में सहयोग कर सकती है। 1968 में नेशनल पालिसी ऑन एजूकेशन में कहा गया है कि बालिकाओं की शिक्षा को सामाजिक न्याय के आधार पर नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन के रूप

में बल देना चाहिए। इन आयोगों एवं कमेटियों के संस्तुतियों के आधार पर बालिका शिक्षा में काफी प्रगति हुई है।[3]

स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे संविधान निर्माताओं तथा आधुनिक भारत के शिल्पियों ने यह अनुभव किया कि बालिकाओं में राष्ट्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना जागृत किये बिना समाज कभी उन्नति नहीं कर सकेगा। संस्कारिक, अनुशासित, समर्पित तथा राष्ट्रभक्ति से ओत–प्रोत नारी शक्ति ही राष्ट्र के उज्जवल भविष्य का संकेत देती है। भारतीय बालिकाओं में असीमित क्षमताएं व सम्भावनाएं है परन्तु वह अपनी शक्ति की अनुभूति नही कर पातीं। अतः महिलाओं के स्तर की पुनः स्थापना के प्रति कटिबद्ध हमारे संविधान निर्माताओं ने लिंग भेद किये बिना स्त्री–पुरूषों को समान अधिकार प्रदान किये हैं। बालिकाओं के स्तर में समानता लाने का उद्देश्य व भाव मौलिक अधिकारों व राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में छिपा हुआ है। विश्व में भारत ही वह प्रथम राष्ट्र है, जहाँ लोकतान्त्रिक प्रणाली लागू होते हुए भी बालिकाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ है, परन्तु यह अधिकार तब व्यर्थ हो जाएगा जब बालिकाओं को इस बात की समझ व ज्ञान न हो कि उनके मत से राष्ट्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण मामलों का निर्णय प्रभावित हो सकता है। इसके लिए बालिकाओं को शक्तिशाली व जागरूक बनाने की आवश्यकता है जिससे उनमें स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो सके। वे अपने जीवन से सम्बन्धित योजनाएं बनाने में समर्थ हों, उनमें परिस्थितियों पर नियंत्रण करने की क्षमता हो तथा वे त्रुटिपूर्ण परम्पराओं का विरोध करने का साहस जुटा सकें।

lUnHk %

1. अल्तेकर, ए0एस0ः एजुकेशन एन एन्सिएन्ट इण्डिया, इण्डियाबुक शाप, वाराणसी – 1957
2. अग्रवाल, एस0 पी0 एण्ड अग्रवाल, जे0सी0 : वोमेन्स एजुकेशन
3. राम बाबू गुप्ता : शिक्षा मनोविज्ञान, न्यू पब्लिशिंग हाउस, 1973, पृ0 102

****

Mk- vEcMdj vkj nfyr efgykvk dk l?k"k

Mk0 vujkfxuh jkor*

डॉ. अम्बेडकर के समय दलित महिला अपनी व समाज की स्वतंत्रता समानता को लेकर की गई सक्रिय व संघर्षपूर्ण भागीदारी का स्वर्णकाल है। दलित महिला आन्दोलन और डॉ. अम्बेडकर के साथ महिला आन्दोलन की सुसंगत शुरुआत 1920 से मान सकते हैं। हालाँकि सुगबुगाहट सन् 1913 से ही गई थी। 1920 में 'भारतीय बहिष्कृत परिषद' की सभा कोल्हापुर नरेश छत्रपति शाहू जी महाराज की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस सभा में पहली बार दलित महिलाओं ने भाग लेकर अपनी सक्रिय भूमिका निभाई।

20 जुलाई 1924 में मुबंई में आयोजित 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की गई। इस सभा की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यता के खिलाफ जंग छेड़ने के अलावा दलित बस्तियों में स्कूल व छात्रावास खोलने संबंधी प्रयास कर दलित समाज में जागृति व चेतना पैदा करना था।

बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की सभाओं में वेणुबाई भटकर और रंगबाई शुभरकर अपने मधुर कंठ से दलित पीड़ा की मार्मिक और संघर्षपूर्ण अभिव्यक्ति को गीतों में ढ़ालकर मनमोहक स्वर में गाकर सबका मन मोह लेती थीं।

उच्च शिक्षित दलित महिला जाईबाई चौधरी जो बाद में सशक्त दलित महिला नेता के रुप में रुप स्थापित हुईं, उन्होंने 1924 में चोखामेला कन्या पाठशाला आरम्भ की।

जाईबाई चौधरी के अथक प्रयासों से दलित महिला आंदोलन की माला में संघर्ष का एक मोती और जुड़ गया।[1]

---

*अतिथि प्रवक्ता, राजनीतिशास्त्र विभाग, शासकीय छत्रशाल महाविद्यालय, पिछोर, शिवपुरी, मध्य प्रदेश

23–24 फरवरी 1924 में ही मोहपा में 'मध्याप्रांत'वराड माहर परिषद'आयोजित की गई और इस सभा में एक ब्राह्मण वक्ता ने कहा कि ''महारा को कटा हुआ माँस नहीं खाना चाहिए परन्तु उनका मृत मांस खाने में कोई हर्ज़ नहीं है। ब्राह्मण वक्ता की इस बात पर वे बाई भटकर और रगुंबाई शुभरकर ने खूब धुनाई की।'' महिलाओं की सभा में दलितों ने यह प्रण लिया गया कि अब अस्पृश्य लोग हिन्दुओं पर निर्भर नहीं रहेंगे और अपनी मुक्ति के रास्ते खुद खोजेंगे। इस सभा के आखिर में दो प्रस्ताव पारित किए गए। पहला यह कि अस्पृश्यता के खिलाफ़ सरकारी कार्यवाही होनी चाहिए दूसरा, सरकार का ध्यान शिक्षा की ओर खींचना चाहिए। 1920 लेकर 1924 तक दलित महिला आंदोलन अपनी मंथर गति से चलाता हुआ स्त्री शिक्षा और अस्पृश्यता के मुद्दे पर समाज का ध्यान खींचती रहा। 1927 का साल दलित आंदोलन के साथ–साथ दलित महिला आंदोलन के लिए भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सन् 1927 के अन्त में बाबा साहब द्वारा चलाये गए महाड़ सत्याग्रह की परिणति 'मनुस्मृति दहन' और 'चावदार तालाब का पानी पाने' से हुई। 25 दिसम्बर 1927 को चावदार तलाब के महाड़ा सत्याग्रह के ऐतिहासिक सम्मेलन में ढ़ाई हजार दलित औरतों ने 'मनुस्मृति दहन' में शामिल होकर हिन्दू धर्म के स्त्री विरोधी कानून को मानने से इंकार कर दिया। इसी सभा में दलित महिलाओं की भारी संख्या में उपस्थिति देखकर डॉ. अम्बेडकर ने उनके पक्ष में अपना ऐतिहासिक भाषण दिया। बाबा साहब ने कहा ''स्त्रियों को गृहलक्ष्मी ही क्यों होना चाहिए? मन में ऊँची महत्त्वकांक्षा रखों। ज्ञान और विद्या पर केवल पुरुषों का ही अधिकार नहीं है, वह स्त्रियों के लिए भी अति आवश्यक है। यदि तुम्हें आगे की पुश्ते सुधारनी है। तो तुम्हें लड़कों के साथ–साथ लड़कियों को भी शिक्षा देनी होगी। घर में पति अगर मरे हुए जानवर का माँस लाए तो उससे कहो कि ये सब मेरे घर में नहीं चलेगा। गले में इतनी वजनी मालाएँ और हाथों में कोहनी तक के कड़े और कंगन, यह सब तुम्हें अस्पृश्य करके पहचानने की निशानी है।''[2]

इस ऐतिहासिक भाषण का दलित महिलाओं पर इतनी तीव्रता से असर हुआ कि उन्होंने उसी सभा में हाथ तक भरे कड़े गले में बड़ी वजनी

मालाएँ उतार दी और सभा में उपस्थित सौभाग्य सहस्त्रबुद्धे व रमाबाई अम्बेडकर से दलित महिलाओं ने समाज की अन्य वर्ग की महिलाओं की तरह साड़ी पहनना सीख लिया । 1927 तक अम्बेडकरवादी दलित महिला आंदोलन का मुख्य मुद्दा शिक्षा, सफाई, संगठन और संघर्ष था।

दलित महिलाओं की केवल अपने घरों में ही स्थिति खराब नहीं थी अपितु फैक्ट्रियों और खेत–खलिहानों में तो उनको वर्कर तक नहीं माना जाना था। गर्भावस्था की हालत में उन्हें नौकरी से निकाल दिया जाता था। उनको पूरा वेतन नहीं मिलता था। उनके काम के घंटे भी निश्चित नहीं थे। 28 जुलाई 1928 को मुंबई विधान परिषद में कारखाना व अन्य सरकारी/ गैर सरकारी संस्थानों में कार्यरत मजदूर महिलाओं के पक्ष में प्रसूति अवकाश सुविधा बिल पर अपने सशक्त विचार रखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि ''महिलाओं को प्रसूति अवकाश व पूरा वेतन प्रदान करना राष्ट्रीय हित में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। मैं इस बात से सहमत हूँ कि इससे शासन पर भारी आर्थिक बोझ पड़ेगा लेकिन फिर भी मैं वेतन कटौती का पक्षधर नहीं हूँ। यह महिलाओं का उनका अपना अधिकार है जिसकी प्राप्ति उन्हें होनी चाहिए।''[3]

इस तरह दलित महिलाओं ने अपने अस्मिता संघर्ष के साथ मजदूर आंदोलन के संघर्ष के साथ मजदूर आंदोलन के संघर्ष और उनके मुद्दों को अपने आंदोलन का अहम हिस्सा बना लिया।

1928 में ही मुंबई में 'महिला मंडल' की स्थापना भी की गई और इस 'महिला मंडल' की प्रथम अध्यक्षा डॉ. अम्बेडकर की पत्नी रमाबाई को चुना गया। 1928 में बने 'महिला मंडल' ने आगे चलकर दलित महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक स्थिति संभालने व उसको आगे ले जाने की दिशा में अमूल्य योगदान दिया।

चावदार तालाब को सार्वजनिक रुप से खुलवाना व पानी के प्रतीक के रुप में दलित अस्मिता की लड़ाई को आगे आगे बढ़ाने की कड़ी में एक अन्य महत्त्वपूर्ण सत्याग्रह। इस सत्याग्रह में दलित महिलाओं ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। 12 अक्टूबर 1929 को डॉ. अम्बेडकर और दलित महिला नेता तानुबाई के नेतृत्व में जब हज़ारों दलित महिलाएँ एक जुलूस की शक्ल में मन्दिर–प्रवेश करने लगी तो सवर्णों ने इन पर लाठी–डंडों और पत्थरों से हमला कर दिया जिससे अनेक दलित स्त्री–पुरुष घायल हुए।

इस आंदोलन में भाग लेने वाली दलित महिलाओं की संख्या महाड़ सत्याग्रह से भी अधिक थी। पार्वती मन्दिर के प्रवेश सत्याग्रह का नेतृत्व करने वाली तानुबाई आगे चलकर सुप्रसिद्ध दलित महिला नेता के रुप में विख्यात हुई।[4]

lUnHk %

1. सिंह, तेज (सं0). 2008; अम्बेडकरवादी विचारधारा और समाज, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 215
2. धनंजय कीर; डॉ. अम्बेडकर, लाइफ एंड मिशन,
3. मोहनदास नैमिशराय; महिला आंदोलन में दलित महिलाओं का योगदान,
4. सिंह, तेज (सं0). 2008; अम्बेडकरवादी विचारधारा और समाज, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 218

****

fgUnh nfyr dk0; e ukjh dh lkekftd fLFkfr

Mk0 jktefu*

हिन्दी दलित काव्य की यात्रा सन् 1934 में "समता" पत्रिका अल्मोड़ा एवं सन् 1962 में "भीम पत्रिका" जहाँ जालंधर–पंजाब से मानी जाती है। इसके बाद 1980 से 1985 तक अनेक पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से दलित कवियों की अनेक कविताएँ प्रकाशित होती रहीं। सन् 1934 से 1990 तक की कविताओं में नारी जीवन की संवेदना अनेक रूपों में दिखायी देती है। उसमें नारी का जीवन कैसा रहा होगा? यह केवल कहने एवं सुनने की बात नहीं है, बल्कि अनुभव करने की बात है कि नारी शोषण तीन प्रकार से होता था–पहला जाति से दलित, आर्थिक स्वायत्तता का अभाव, नारी होने के कारण शिक्षा का अभाव। दलित आन्दोलन का प्रारम्भ डा0 भीमराव अम्बेडकर की वैचारिकी से हुआ। भारतीय समाज में दलितों की विकास यात्रा को सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए डा0 अम्बेडकर दलित पुरूषों के साथ–साथ दलित नारियों के उत्थान एवं विकास की बात कही। डॉ0 अम्बेडकर का मानना था कि जब नारी पुरूष के साथ प्रत्येक कार्य को करने के लिए तैयार है तो पुरूषों को भी उसे बराबरी का अधिकार देना होगा।

सन् 1942 में दलित महिलाओं ने नागपुर में 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन किया तो इसमें लगभग 30 से 35 हजार महिलाओं से सक्रीय भागीदारी निभायी इसी सम्मेलन के मंच से डॉ0 अम्बेडकर ने महिलाओं के उत्थान के विषय में बोलते हुए कहा–

"किसी भी समाज की प्रगति का सही अन्दाजा नारियों में हुई प्रगति से ही लगाया जाता है। आप घरों से निकलकर यहाँ तक आई निश्चय ही आप प्रगति के पथ पर हैं। आप अपने पतियों के सामाजिक कार्यों में सहयोग करें।

*वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, म0गाँ0 काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ0प्र0

पति की दासी नही मित्र बनें। बच्चे कम पैदा करें और उन्हें अपने पैरो पर खड़े होने पर ही उनकी राय के अनुकूल शादियाँ करें बेटा–बेटी दोनों को उच्च शिक्षा दें, पति यदि शराब पीकर घर में घुसें तो उनके लिए घरों के दरवाजे बन्द कर दें। अधिक नहीं तो आप इन थोड़ी सी ही बातों पर ही अमल करें तो निश्चय ही आपकी प्रगति होगी।''[1]

डॉ0 अम्बेडकर सदैव इस बात पर जोर देते थे कि दलित समाज की प्रगति का सबसे बेहतर मूल्याँकन इस बात पर निर्भर करता है कि दलित नारियों ने आदिकाल से लेकर आज तक कितनी प्रगति की है।

यह बड़े दुःख की बात है कि जिस स्त्री और पुरूष से समाज का निर्माण होता है वहाँ केवल पुरूष के शोषण एवं अत्याचार पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है। जब से दलित आन्दोलत का प्रारम्भ हुआ है तब से आज तक सबसे अधिकांश उपन्यास, नाटक, कविता आदि में सबसे अधिक फोकस दलित पुरूषों पर ही रहता है। जब से डॉ॰ सुशीला टॉकभौरे जैसी लेखिकाओं ने अपना लेखन कार्य प्रारम्भ किया है तब से नारी की सामाजिक स्थिति अपने वास्तव रूप में उभर कर सामने आई है। सुशीला की ''शिकंजे का दर्द'' आत्मकथा में दलित नारी जीवन के दर्द का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। दलित कवियों में श्यौराज सिंह बेचैन ने पुरूष होते हुए भी नारी जीवन के दर्द को अपनी कविता में मुख्य स्थान दिया है। वे अपनी कविता 'औरत की गुलामी' में बड़ी बेबाकी से कहते हैं कि दलित समाज की औरतों का बचपन अनेक प्रकार की बंदिशों के जाल में फँसा होता है। जब दलित नारी जवान होती है तो वह अपनी ही जवानी के बोझ तले घुटती रहती है। दलित पुरूष लड़कों को तो बाहर आने–जाने की आजादी देते हैं लेकिन जवान लड़की को नहीं। वे आगे स्पष्ट करते हैं कि औरत की गुलामी की कहानी एक दिन की नहीं बल्कि सदियों से चली आ रही सवर्ण समाज की गुलामी की देन हैं। वे बताते हैं कि दलित नारी किस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक अपनी जान पर खेल कर परम्पराओं का निर्वाह करती हैं–

^^cfn'k Hkjk gS cpiu] ckf>y lh tokuh gS]
vkSj dh xqykeh Hkh] ,d yEch dgkuh gSA

rkyhe esa derj gS] ckgjh gok tgj gS]
yM+dk dgha Hkh tk;] ml ij dM+h utj gS]
mls tku xaokdj Hkh gj jLe fuHkkuh gSA[2]
vkSjr dh xqykeh Hkh] ,d yEch dgkuh gS**A

भारतीय समाज ही दुनियाँ का ऐसा समाज है जहाँ सबसे अधिक समाज सेवा करने वाली दलित औरतें प्यार, सम्मान एवं न्याय पाने की बजाय मानसिक एवं शारीरिक शोषण का शिकार होती हैं। यानी वे औरतें जो अपने तन पेट की परवाह किये बिना सुविधा सम्पन्न लोगों की जी हुजूरी करती हैं, वे ही उन नालायक भेड़ियों के उत्पीड़न का सबसे अधिक शिकार होती हैं। कर्मशील भारती कहते हैं कि यह देश आज भी उसी जंगल राज का शिकार हैं जिसमें किसी का सम्मान सुरक्षित नहीं है। यहाँ दलित नारियाँ पानी की जगह अपमान के आँसू पीकर नरकीय जीवन जीने को विवश हैं। कर्मशील भारती अपनी 'उत्पीड़न' कविता में दलित नारी के शारीरिक शोषण को बहुत मार्मिक ढंग से बयाँ करते हैं। जिसे पढ़ कर कोई भी भला मानव अन्दर से काँप उठेगा–

^^Hkkjr vkt Hkh txyh ;qx esa th jgk gS]
L=h vkSj nfyr dh vfLerk ij geyk gks jgk gSA
deZ'khy ekuo] fur u;s vieku ds vkalw ih jgk gSA**[3]

इसमें कोई शक नहीं कि जहाँ धर्म के आधार पर स्त्री को देवी का दर्जा दिया जाता है, वहीं दूसरी ओर उसके साथ पशु से भी बदतर व्यवहार किया जाता है। यहाँ धार्मिक आजादी सिर्फ ब्राम्हणों एवं ठाकुरों तक ही सीमित है, इनसे इतर सभी के लिए धार्मिक परम्पराएँ उस हाथी के दाँत की तरह हैं जो खाने के और दिखाने के और होती हैं। यदि दलित नारी की बात की जाय तो उसे जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा में जो–जो दर्द सहना पड़ता हैं उसे सिर्फ वही समझ सकती है। लेकिन यह भी सोलह आने सच है कि आज से 50 वर्ष पहले जो दलित नारी अपनी हर पीड़ा को आँख मूँदकर पी जाती थी, आज वही बड़ी से बड़ी यातना सहने के बाद भी चुप नहीं बैठती है। आज वह लेखनी थाम चुकी है, तलवार में धार दे चुकी है

और काल को भी चुनौती देने को तैयार है। वह जैसा जीवन जीती है उसे बयाँ करने में कभी भी चूकती नहीं है।

दलित कवयित्रियों में डॉ॰ सुशीला टॉकभौरे का नाम बड़े आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। दलित साहित्यकारों की चर्चा हो और सुशीला टॉकभौरे का नाम न लिया जाय यह सम्भव नहीं अर्थात् सुशीला टॉकभौरे के नाम के बिना दलित विमर्श जैसे अधूरा है। इनका साहित्य एक तीर से दो निशाने साधता है।

igyk& दलित जीवन की दिशा व दशा बयाँ करता है।

nljk& दलित जीवन में भी नारी के सामाजिक जीवन की वास्तविकता को हूबहू पाठकों से रूबरू कराता है। 'स्वाति और खारे मोती'' एवं ''यह तुम भी जानो'दोनों काव्य संग्रह सुशीला के सामाजिक जीवन एवं उनके भोगे हुए यथार्थ को बड़ी ईमानदारी से अभिव्यक्त करते हैं। इनकी कविताओं में दलित नारी की जो विवशता दिखायी देती हैं वह अकेली सुशीला की नहीं बल्कि उस आधी आबादी की है जिसके बिना पुरूष समाज अधूरा ही नहीं बल्कि असम्भव भी हैं 'विद्रोहिणी' कविता में नारी की बेबशी देखते ही बनती है–

^^ek&cki us iSnk fd;k Fkk xxk
ifjos'k us yxMk cuk fn;k]
pyrh jgh ifjikVh ij]
cSlkf[k;ksa ds lgkjs]
fdrus iMko vk;s]
vkt thou ds p<ko ij
cSlkf[k;k pjejkrh gS]
vf/kd cks> ls vdykdj]
foLQkfjr eu gdkjrk gS]
cSlkf[k;ksa dks rksM+ nA**[4]

साहित्य जगत में जितने भी विमर्श चले हैं– चाहें स्त्री विमर्श हों, दलित विमर्श इन सभी का मुख्य आधार सन्त रविदास, सन्त कबीर, सन्त नानक, सन्त गाडगे, ज्योतिबा फुले, डॉ॰ अम्बेडकर आदि सभी रहे हैं। इन

सभी में डॉ0 अम्बेडकर ने कलम की शक्ति से दलितों के अधिकार की पैरवी ही नहीं की बल्कि दलित नारी के जीवन को भी सुखमय बनाने के लिए पूरा–पूरा प्रयास किया। वे इस बात को महसूस करते हैं कि दलितों का विकास दलित नारी और दलित पुरूषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने से ही सम्भव है। यही कारण है कि वे शिक्षा, स्वास्थ्य, संगठन एवं संघर्ष पर विशेष बल देते है।

आजादी से लेकर आज तक दलितों के जीवन में परिवर्तन तो हुआ हैं लेकिन उतना नहीं जितना होना चाहिए। दलितों के थोड़े से विकास भर से गैर–दलितों की आत्मा भुस के धूँए की तरह सुलग उठती है। वे इस बात को भूल जाते हैं कि क्षण–क्षण परिवर्तनशील हैं। आज भी दलित विद्वान या साहित्यकार को देखकर गैर दलित नाक–भौं सिकोड़ते हैं। यहाँ तक वे कह डालते हैं कि साहित्य दलित कैसे हो सकता है?

स्वतन्त्रता पूर्व से आज तक जो पीड़ा, दर्द एवं अत्याचार दलित समाज सहता आया है, और जो मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न दलित नारी ने झेला है क्या कभी गैर दलित समाज की नारियों ने झेला है? यदि उनकी बहन–बेटी को भी चौराहे पर नंगी करके गधे पर बैठा कर घुमाया और उनका सामुहिक बालात्कार होता तो क्या वे उसी तरह सम्वेदन हीन होते। क्या तब भी उनकी निष्ठा एवं आस्था उसी प्रकार स्थिर रहती। कंवल भारती ने अपनी कविता ''तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती'' कविता में इसी बात को व्यक्त करने की कोशिश की है। कंवल भारती ने अपनी कविता 'तब तुम्हारी क्या होती? इसी तरह सुन्दर लाल सागर ने भी इसी प्रकार के भाव अपनी कविता में अभिव्यक्त किये हैं–

^^rqEgkjh cgu&csfV;ka dk]
lkoFkk voLFkk ?kek;k tk;]
xyh&xyh upk;k tk;]
dlk tk; fQdjs vkj fd;s tk; cykRdkj]
lMdksa pkjkgksa ij lkeus rqEgkjs]
rc rqEgs dSlk yxxkA[5]

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य के जाने–माने हस्ताक्षर हैं। इन्होंने अपनी कविता के माध्यम से गैर दलित नारी और दलित नारी के जीवन के बीच अन्तर को बहुत साफगोई से प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि गैर दलित नारी सुबह से नहा–धोकर तैयार होकर ऑफिस जाती है वहीं एक दलित नारी सुबह से शाम तक झाड़ू लेकर निकलती है और दूसरों की गन्दगी साफ करते–करते थककर चूर हो जाती है। उसे बदले में क्या मिलता हैं? अपमान, घृणा, शोषण एवं अत्याचार। इतना ही नहीं उसे उस सफाई के बदले सुबह बासी व जूठी रोटी दी जाती है। उसकी पूरी जिन्दगी धूल–धूँआ को फाँकते–फाँकते समाप्त हो जाती है। ''झाड़ू वाली'' कविता के माध्यम से दलित नारी के दर्द को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है–

^^lcg ikp ct] Fkke gkFk e >kM]
?kj l fudy iMrh gA jkeljh
ykg dh gkFk xkMh /kdyr g,]
[kMx&[kMx dh dd'k vkokt
Vdjkrh g 'kgj dh muhnh nhokjk lA
jkeljh d gkFk e Fkeh ckl dh ekVh >kM
lMd d ÅcM&[kkcM lhu ij]
'p&'p dh /ofu l rjrh gA
mMkrh g /ky dk xckj]/ky tk ldMk o"kk l]
te jgh g ijr nj ijr]QQMk e jkeljh d]
jx jgh g 'okluyh dk]fpeuh lkA**6

दलित कविता के विषय में यही कहा जा सकता है कि– ''दलित कविता अपने यथार्थ को व्यक्त करने भर से अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर सकती। उसे दोहरी भूमिकाएँ निभानी हैं। एक मोर्चे पर उसे दलितों में व्याप्त मनोवैज्ञानिक भयाक्रान्तता को दूर करके उनके दिलों में समतामूलक स्वाभिमान जगाना होगा। तो दूसरे मोर्चे पर प्रतिपक्षी विचारकों के दिलों में अपराध–बोध एवं प्रायश्चित भाव जागृत करना होगा उन्हें आत्म विवेचन को विवश करना होगा। वह यह कर सकेगी क्योंकि वह सक्षम हैं। उसके पास बहुसंख्यक दलित समाज है और साथ ही वह अंधविश्वास, देवी–देवताओं,

आडम्बरों एवं कल्पना लोक से ऊपर उठकर इनकी वास्तविकता को पहचान चुकी है।''[7]

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता हैं कि हिन्दी दलित कविता अपने प्रेम–सौन्दर्य के साथ–साथ दलित जीवन और खासकर नारी जीवन की विविध संवेदनाओं को दिखाती है अर्थात् हिन्दी दलित कविता नारी जीवन के अनेक उतार–चढ़ाव एवं विकास को प्रोत्साहित करने की पूरी ताकत रखती है। वह यह भी संकेत करती हैं कि दलित नारी का जीवन आजादी से पहले कैसा था? आज कैसा है? आगे कैसा रहेगा? इन सारे सवालों का जवाब दलित कविता के पास मौजूद हैं। यही वह कविता है जो नारी के सोये हुए स्वाभिमान को जगाकर समाज की प्रत्येक दुर्व्यवस्था से टकराकर आगे बढ़ने का रास्ता दिखाती है। वह जीवन के प्रत्येक मोर्चे पर शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ विद्रोह करने की ताकत देती है।

lUnHkZ %

1. कौशल्या बैसंती; 'दलित महिला और अम्बेडकर' मासिक 'प्रतिपक्ष', 1999
2. श्यौराज सिंह बेचैन; नई फसल (काव्य संग्रह), ''कविता औरत की गुलामी'' पृ0 50
3. कर्मशी भारती; 'उत्पीड़न (कविता)', दलित मंजरी (काव्य संग्रह), पृ0 105
4. डॉ॰ सुशीला; टॉकभौरे; ''स्वाति बूँद और खारे मोती'', काव्य संग्रह, पृ0 17
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि; झाड़ू वाली (कविता), सदियों का संताप (काव्य संग्रह), पृ0 17
7. रजत रानी; 'मीनू', नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, पृ0 52

****

i|:"k lÙkk d f'kdt e rMQrh nfyr ukjh

¼^f'kdt dk nn^ d fo'k"k lUnHk e½

MkO je'k pUn*

आज दलित समाज की आशा, निराशा, अपेक्षा, उपेक्षा, समस्या, समाधान, उत्पीड़न, वेदना और शोषण को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है यह कार्य किया है। अम्बेडकरी चिंतन से प्रेरित दलित साहित्य ने दलितों के सभी पक्षों को उजागर करने में दलित साहित्य सफल एवं समर्थ रहा है। बजरंग बिहारी तिवारी लिखते है– ''भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य के विकास क्रम को सहूलियत के लिए पाँच चरणों में बाँटा जा सकता है– वेदना, नकार, विद्रोह, विश्लेषण और विजन। पहले चरण में दलित समाज की वेदना का चित्रण हुआ और उस वेदना को जन्म देने वाली परिस्थिति विशेषकर उत्पीड़न का दूसरे दौर में दुःखदायी व्यवस्था को नकारा गया। इसके बाद इस व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह का स्वर बुलन्द हुआ। अगले चरण में यह चिंतन प्रमुख हुआ कि हमारी स्थिति ऐसी क्यों हुई। इस क्यों का विश्लेषण करते हुए पाँचवे और वर्तमान दौर में विजन निर्माण पर विशेष बल दिया जाने लगा है। भविष्य का समाज कैसा हो, यह इस वक्त प्रतिरोधी दलित साहित्य के लिए केंद्रीय प्रश्न है। दलित आत्मवृत्तों ने शुरू के तीन चरणों में अपनी विशेष भूमिका निभाई। उत्पीड़न के स्वरूप को लेकर बात करें तो दलित आत्मवृत्तों में भौतिक, मानसिक तथा मिश्रित तीनों तरह के उत्पीड़न दर्ज हैं। दलित बस्ती पर हमला, पिटाई, आगजनी, आर्थिक दण्ड आदि भौतिक या शारीरिक उत्पीड़न है और तिरस्कार, अपमान, दुर्वचन, मानसिक, स्त्रियों का बलात्कार, शोषण, देह और मन दोनों को घायल करता है। दलितों को जूते पहनने पर प्रतिबन्ध, नये कपड़े पहनने पर रोक, बसीठों के पास गुजरने पर चारपाई से उठ जाने की मजबूरी, शादी–विवाह में घोड़ी पर बैठने पर

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ0प्र0

पाबन्दी जैसे मानसिक उत्पीड़न के अगणित प्रसंग इन आत्मवृत्तों में दर्ज हैं।''[1]

जब दलित आत्मवृत्तों पर विचार किया जाता है तो वहाँ सिर्फ पुरूषों की ही उपस्थिति नहीं है, वरन् दलित महिला रचनाकारों के आत्मवृत्त भी उपलब्ध हैं। इनके ''आत्मकथन दलित लेखन और चितंन के नये अध्याय के रूप में देखे जाते हैं। इनसे दलित साहित्य की निरंतर विकसित होती धारा की सूचना मिलती है। इन आत्मवृत्तियों पर विचार में ये बिन्दु हो सकते हैं–

(क) दलित स्त्री की जिन्दगी का सच।

(ख) दलित स्त्री का प्रतिरोध।

दलित स्त्री आत्मकथन एक बड़े अभाव की पूर्ति करते हैं। दलित स्त्रियों ने दलित आन्दोलन को बहुस्तरीय बनाया है। अपनी जिन्दगी का सच बयान करके उन्होंने आन्दोलन की दिशा को वांछित परिप्रेक्ष्य देने का काम किया है। दलित स्त्रियों की जिन्दगी, उनकी समस्याओं से अम्बेडकरवादी आन्दोलन का जुड़ाव मजबूत हुआ है। परिवार का जो ढाँचा हमारे समाज में है वह पितृसत्तात्मक है। इस पितृसत्ता के 'दलित संस्करण' पर बहस इन आत्मकथनों के प्रकाशन के बाद बेहतर ढ़ग से शुरू हुई है। दलित स्त्री को स्त्री होने का, दलित होने का और गरीब होने का तिहरा संताप एक साथ झेलना पड़ता है। गैर–दलित पुरूषों के लिए वह उपभोग की सामग्री है तो गैर–दलित स्त्रियों के लिए तिरस्कार योग्य समुदाय। स्वयं दलित पुरूषों की निगाह उसे गैर बराबर मानती है।''[2]

बजरंग बिहारी तिवारी दलित स्त्री आत्मकथनों में जिन दो बिन्दुओं– दलित स्त्री की जिन्दगी का सच ओर दलित स्त्री का प्रतिरोध की ओर इशारा करते है। वह उनकी रचनाओं में प्रमुखता से मुखर है। इसका मूल कारण यह है कि 'समाज में रची–बसी विषमतामूलक समाज संरचना को तोड़ने में दलित स्त्री की भूमिका अहम् रही है। जबकि पितृसत्तात्मक मानसिकता ने उन्हें घर की देहरी में कैद करने उसकी स्वतन्त्रता को खण्डित करने, उसकी अस्मिता पर चोट करने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ा है।''[3]

पुरूषसत्ता प्रधान भारतीय समाज के शिकंजे में जकड़ी हुई अनेक महिला रचनाकार हैं, जिन्होनें अपने भोगे हुए सच की पीड़ा को मुखर स्वरों

में अभिव्यक्ति दी है। क्योंकि ''पीड़ा का सच भुक्तभोगी ही महसूस कर सकता है।''[4] ऐसी ही एक प्रख्यात एवं लोकप्रिय रचनाकार हैं डॉ0 सुशीला टाकभौरे। इन्होंने अपने जीवन में जितना तिरस्कार, उपेक्षा, अपमान, दर्द, शोषण और उत्पीड़न झेला है, वह किसी 'शिकंजे से कम नही है। इसीलिए इन्होंने अपनी आत्मवृत्त रचना को नाम दिया है– 'शिकंजे का दर्द'। डॉ0 सुशीला टाकभौरे लिखती हैं–'शिकंजे का दर्द' में संताप है दलित होने का, स्त्री होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित जीवन की व्यथा है। स्त्री होना ही जैसे व्यथा की बात है। चाहे हमारा देश हो या विश्व के अन्य देश, हर जगह शोषण–उत्पीड़न का शिकार स्त्री ही रही हैं। जिस देश में वर्णभेद, जातिभेद की कलुषित परम्पराएँ हैं वहाँ दलित स्त्री शोषण की व्यथा और भी गहरी हो जाती है। सदियों से तिरस्कृत और अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर किये गये दलित जीवन की व्यथा–कथा का दर्द 'शिकंजे के दर्द' में समाहित है। 'शिकंजे का दर्द' लिखने का उद्देश्य दर्द देने वाले शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है।''[5]

i|:"k i/kku lekt dh ekufldrk dk lk{kkRdkj

ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–''दलित समाज ने स्त्री को स्वतन्त्रता दी है लेकिन साथ ही पितृसत्तात्मक वर्चस्व भी कायम रखा है। इस वर्चस्व ने कुछ ऐसी नैतिकताएं भी निर्मित की है, जो इनकी अपनी नैतिकताएं नहीं थीं। प्रेम का सीधा सम्बन्ध इन्हीं नैतिकताओं के साथ जुड़ा है। इसीलिए स्त्री की सोच और उसके निर्णय पुरूष अपने वर्चस्व में बाँधे हुए है। उत्पादन के स्तर पर स्त्री उसके साथ खड़ी है, लेकिन प्रेम सम्बन्धी उसकी धारणाओं मान्यताओं पर पूरा नियन्त्रण पुरूष का है जिसे वे अपना पुरूषत्व समझ बैठे है और अपनी इन मानवीय इच्छाओं को उन्होने नैतिकता के छद्म में कुछ इस तरह लपेट रखा है कि वह स्त्री की इच्छाओं के विरूद्ध खड़ा है।''[6] विवाह के बाद प्रत्येक स्त्री अपनी पति के साथ दाम्पत्य के कुछ मधुर क्षण बिताना चाहती है, यह उसका प्राकृतिक हक है। सुशीला टाकभौरे भी अपने दाम्पत्य में ऐसे अवसरों को प्राप्त करना चाहती है। उसका पति सुन्दरलाल टाकभौरे पुरूषसत्ता प्रधान समाज का सच्चा प्रतिनिधि है। जब भी कभी ऐसा अवसर आया, उसने सुशीला के हृदय को आघात ही पहुँचाया–''एक

बार सासू माँ और ननद के साथ मैं 'मीठा नमी' दरगाह जा रही थी। टाकभौरे जी घर में थे। घर से थोड़ी दूर आने पर मैंने याद करके कहा–''घर की दूसरी चाबी नही ली? यदि वे कहीं गए तो लौटने पर घर में ताला लगा मिलेगा।'' सासू माँ ने कहा– ''जा चाबी ले आ।'' मैं जल्दी–जल्दी घर में आयी। इन क्षणों में मैंने सोचा था–टाकभौरे जी घर में अकेले में मुझे देखकर प्यार करेगें। भले ही क्षण दो क्षण का, मुझे उनका प्यार मिलेगा। मैं हँसती–मुस्कराती घर में आयी और चाबी की बात कहीं। टाकभौरे जी ने तुरन्त मेरे सामने चाबी फेंकी और घर से बाहर सड़क पर खड़े हो गऐ जैसे कही उन पर मेरे साथ बदचलनी का इल्जाम न लग जाये। मैं चुपचाप चाबी उठाकर बाहर आ गई। उस वक्त मेरे दिल पर क्या गुजरी, यह मैं ही जानती हूँ।''[7]

सुशीला टाकभौरे ने अपनी उम्र से कहीं अधिक बड़े अपने पति के साथ हर प्रकार का सहयोग दिया, उनकी हर प्रकार से सेवा की। पत्नी का ऐसा कौन सा धर्म या कार्य था जो सुशीला ने नहीं किया। किन्तु फिर भी उनको अपमान और उत्पीड़न भरे शब्दों से ही दो–चार होना पड़ता–

''तू मुझे समझती क्या है? तेरी हिम्मत कैसे हुई रूपये लाकर नहीं बताने की। तू अपने आपको समझती क्या है?''

''तू मेरे सामने कुछ भी नहीं है तेरी औकात सिर्फ एक बर्तन माँझने वाली नौकरानी के बराबर है।''[8]

''तेरा मुँह गन्दगी की गटर है जब भी मुँह खोलती है गटर की गन्दगी उगलती है।''[9]

''इसको ज्यादा मत बोला करो। इसकी बुद्धि सिर्फ 10–12 साल की उम्र की लड़की की बुद्धि के बराबर है।

क्या इसकी बुद्धि कम है ?

बुद्धि कम नहीं है। बुद्धि का विकास नहीं हुआ है।''[10]

सोचने वाली बात यह है कि यह सब जिसे कहा जा रहा है, वह कोई गाँव की अनपढ़ लड़की नहीं है। बल्कि एक उच्चशिक्षित पी–एच0डी0 उपाधिधारक, महाविद्यालय में उच्च कक्षाओं को पढ़ाने वाली डॉ0 सुशीला टाकभौरे को कहा जा रहा है। वे लिखती हैं–''नागपुर आने के बाद

पारिवारिक प्रेम और अपनेपन के अभाव में मेरा मन दुःखी रहता था। मैं ससुराल के नये वातावरण में, नये लोगों के बीच अपनेपन का विश्वास और सहयोग ढूँढ़ती थी। उन दिनों घर में अक्सर ऐसी बातें होती थीं, जिनसे मेरे हृदय को चोट पहुँचती। मैं पीड़ा से छटपटाकर रह जाती।''[11] ऐसी स्थिति में उनका व्यथित मन शायद यही कहता होगा–

> ^^;s lkpdj fd nj[rks esa Nkao gksrh gS
> ;gka cCpy ds lk;s esa vkdj cSB x,A^^[12]

pk; cuke pIIky

जब किसी स्त्री के विवाह पश्चात् जीवन की शुरूआत होती है, तो वह बहुत उत्साहित होती है। अपने भावी जीवन को लेकर कुछ स्वप्न गढ़ती है, फिर उनके पूरा होने का ख्वाब देखती है। किन्तु सुशीला जी के साथ तो कुछ और ही हो रहा था। नवम्बर 1990 की एक चाय और चप्पल वाली घटना को वह कभी नहीं भूल पायीं–

''सुबह 9–10 बजे किचन में चाय बनाते हुए मैं रूपये खर्च की बात पर बड़बड़ा रही थी और टाकभौरे जी से जवाब–तलब कर रही थी। टाकभौरे जी हाल में सोफे पर बैठे, चुपचाप सुन रहे थे। अपनी बक–बक करते हुए मैं इनके लिए चाय लेकर, सामने रखे टी टेबल के पास आयी। तभी इन्होंने अपने पैरों के पास रखी बाटा की एक चप्पल उठाकर टी टेबल पर रखी और गुस्से के साथ कहा– ''अब बोल, क्या बोलना है?'' मैंने समाज में स्त्रियों पर बहुत अत्याचार होते देखे है। मगर उस दिन की अनुभूति सबसे अलग थी। उस दिन मैं चाय के साथ चप्पल देखकर अवाक् रह गई कि मैं इनके लिए टी टेबल पर चाय रख रही हूँ और वे मेरे लिए चप्पल रख रहे हैं। चप्पल दिखाते हुए, वे फिर ऊँची आवाज में बोले–''हाँ, अब बोल, तुझे क्या कहना है?'' मैंने आराम से चाय का कप टी टेबल पर रखा और चप्पल उठाकर उलट पुलट कर देखी। न जाने कितना क्रोध, कितना आवेग मेरे भीतर भर गया। मुझे कुछ भी होश नहीं रहा, चप्पल मेरे हाथ में थी और मैं चीखते हुए कह रही थी–''तुम मुझे चप्पल से मारोगे? चप्पल से मारोगे? मुझे कुछ होश नहीं था। बस मेरे चीखने और बोलने की आवाज मेरे कानों में सुनाई दे रही थी।''[13]

सुशीला के पति सुन्दरलाल टाकभौरे मनुवादी पुरूषसत्ता के प्रतीक पुरूष जैसे है। एक दलित स्त्री जिस तिहरे संताप को झेलती है, उसमें एक दलित पुरूष का स्वरूप भी है, जो अन्ततः दलित होते हुए भी पुरूष है। अपनी स्त्री के प्रति उसका व्यवहार एक सवर्ण पुरूष से किसी भी मायने में कम नहीं है। कम–से–कम ''शिकंजे का दर्द'' तो यही बयान करता है–''भावुक, अन्तर्मुखी, चितंनशील स्वभाव के कारण मैं हर बात पर विचार करती थी। अनपेक्षित बातें होने पर बहुत दुःख होता था। स्कूल से या बाहर से आने के बाद कभी–कभी टाकभौरे जी मेरे सामने पैर आगे बढ़ा देते। मेरा ध्यान न रहने पर हाथ से इशारा करके जूते उतारने के लिए कहते। मैं चुपचाप उनके पैरों के पास बैठकर जूते उतारती, मोजे उतारती। यह बात मुझे अजीब लगती थी। पति होने के अधिकारों के तहत वे ऐसा करते थे।''[14]

tkfrHksn dk cnyrk Lo:i

'शिकंजे का दर्द' जातिभेद के बदलते स्वरूप का साक्षात्कार भी कराता है। जो नये–नये और अलग–अलग मुखौटे लगाकर हमारे सामने प्रस्तुत होता है तथा प्रगतिशील, उदारवादी एवं लोकतन्त्रिक होने का स्वांग भरता है–'वर्णवादी, जातिवादी मानसिकता के लोग हमको कभी समानता की नजर से नहीं देख पाये। विषमतावादी समाज–व्यवस्था में ऊँच–नीच की बातें ही मानो संस्कृति का आधार हैं। इस भावना को तोड़ने के बदले अधिकाँश लोग इसे पोषित करते हैं। कई बार लोग दोहरा व्यवहार करते हुए जातिभेद भी मानते हैं और लोगों को दिखाने के लिए समतावादी, समरसतावादी भी बनने का प्रयास करते हैं। कई ऐसे लोगों की मनोभावना को अपने जीवन में बहुत करीब से देखा ओर समझा है।''[15] सुशीला टाकभौरे को किराये के मकान की तलाश में ऐसे ही कटु अनुभव हुए। जब उन्होंने अपनी जाति वाल्मीकि को स्पष्ट किया तो जवाब मिला–''मकान किराये पर नही देना है।''

''आप हमारे मकान में कैसे रह सकते हैं ?''

''वाल्मीकि कहकर आप हमें बेवकूफ बना रहे थे ?''

पुनः एक मकान देखा, मालिक से बात हुई। उसने जाति पूछी और अगले दिन आने को कहा। उस मकान मालिक का जवाब आता, उससे पहले स्कूल की एक छात्रा ने बताया–''टीचर जी, कल आप जिस घर को

देखने गए थे, वे कह रहे थे वाल्मीकि यानि भंगी होता है। वे आपको किराये में घर नहीं देगें।''

''तुमको कैसे मालूम हुआ?''

''मैं वहीं रहती हूँ।''

जैसे–तैसे एक परिचित कामरेड का मकान मिला, इसमें भी उसकी पत्नी ने कुछ शर्ते लगा दी– ''तुम्हारे रिश्तेदार यहाँ नही आयेंगे। तुम यहाँ कोई कार्यक्रम आदि नही करोगे। तुमसे पड़ोसियों को कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए।''[16]

एक बार स्कूल मे सहकर्मी शिक्षक गिरधारी सोलंकी की पत्नी उनके आवास पर आयी। सुशीला जी के घर में कोई नही था। उनकी एक पड़ोसन ने मिसेज सोलंकी को बड़ी तत्परता से इनके बारे में इस प्रकार बताया ''है कोई झाड़ूवाली, यहाँ रहती है। हम तो उनसे कोई वास्ता नहीं रखते। न लेना, न देना। पड़ोस में हैं तो मुँह देखना ही पड़ता है। कामरेड का बेटा बड़ा माडर्न बनता है। उसी ने अपना घर किराये पर देकर इन्हें यहाँ बसा लिया है।''[17]

इससे स्पष्ट समझा जा सकता है कि दलितों के प्रति आज भी लोगों की कैसी सोच है? ऐसी सोच के वातावरण में दलितों को कैसी घुटन महसूस होती होगी, कोई गैर–दलित इसका अनुभव कर सकता है?

f'kdats dk nnZ % osnuk dk nLrkost

'शिकंजे का दर्द' के 'मनोगत' शीर्षक में सुशीला टाकभौरे लिखती हैं–

''नानी द्वारा जीया जीवन मेरा भी जीवन बन सकता था। मैने उसकी पीड़ा हर दिन, हर क्षण अपने हृदय पर झेली है। मन–मस्तिष्क से उतनी ही वेदना सही है। मेरा दर्द उस शिक्षित, सम्मानित दलित महिला का दर्द है जो पी–एच0डी0 उपाधि प्राप्त, कालेज की प्राध्यापिका होने के बाद भी जाति के रोजगार के नाम से जानी जाती है। मेरी आत्मकथा मेरी वेदना का दस्तावेज है।''[18] उनके संताप, शोषण, उत्पीड़न और वेदना के क्रम में एक घटना बरबस ही ध्यान आकर्षित करती है–'मेडिकल सर्वेण्ट क्वार्टर की

बात है, एक दिन टाकभौरे जी स्कूल से शाम को आये तब मैं किचन में नीचे बैठकर छोटी थाली में रोटी सब्जी खा रही थी। पता नहीं किस बात पर माँ और बहन से इनकी झंझट शुरू हुई । सीधे मेरे पास आकर मेरी थाली को ठोकर मारी । थाली दूर गिरी। सब्जी रोटी नीचे बिखर गई । मैं चुपचाप देखती रह गई। किसी की थाली में, खाना खाते समय क्या इस तरह कोई लात मारता है ? यह मैंने अपने जीवन में पहली बार देखा था। मन वेदना से भर गया, गला रूँध गया, आँखें भीग गईं। फिर मैंने सोचा–खाना खाते समय किसी भी थाली को लात मारने से पाप लगता है। टाकभौरे जी को इस पाप से बचाने के लिए मैंने थाली उठाकर उसमें नीचे गिरी सब्जी रोटी रखी और उसमें से एक कौर लेकर खा लिया। तब तक आँखों से आँसू बहने लगे थे, लेकिन न किसी ने मेरे आँसूओं की परवाह की न ही मेरी भावना को समझा कि मेरे दिल पर कैसी चोट लगी है।'[19]

पुरूषसत्ता के शिकंजे में तड़फती हुई एक दलित स्त्री 'अपने शोषित–पीड़ित जीवन को कभी नहीं भूल सकती। कैसे भूल पाऊँगी वे दिन! पीड़ाओं में रोया मन, अनबूझा–सा यौवन, सपनों का रूठा वह सावन, जो फिर कभी लौटा ही नहीं। चूर–चूर भावों के कण, बिखरे रेगिस्तान से, न कोई सलिला बही, न मनमौजों की मौज लिये आई कोई बहार ही। कैसे भूलूँ मैं, बीते वे दिन, नागपुर के मेरे जीवन की कथा भी क्या कम व्यथापूर्ण है? कितनी कथाए लिख चुकी हूँ, और न जाने कितनी बाकी है। कटु अनुभव, कड़वी अनुभूतियाँ, कलम की स्याही से ही उन्हें उकेरती रही हूँ और आगे भी उकेरती रहूँगी। जो पाया है वहीं दूँगी, लौटाऊँगीं वह सब, जो मिलता रहा मुझे।'[20]

सुशीला टाकभौरे अपनी वेदना को अभिव्यक्त करते हुए सही कहती हैं–''कब आया यौवन, जान न पाया मन, शिकंजे में जकड़ा जीवन कभी मुक्त भाव का अनुभव ही नहीं कर पाया। जिन्दगी एक निश्चित की गई लीक पर चलती रही। वह उमंग कभी मिली ही नहीं जो यौवन का अहसास कराती। उम्र के साथ कटु अनुभूतियों के दंश महसूस होते रहे। पीड़ा से छटपटाता मन मुक्ति का ध्येय लेकर आगे बढ़ता रहा, तब मुक्ति का मार्ग मैंने शिक्षा प्राप्ति को ही माना था। उसी में तन–मन के साथ डूबी रही।'''[21]

ifrjks/k dk Loj

बुद्ध ने कहा कि क्षण–क्षण परिवर्तनशील है। शिकंजे के दर्द का दायरा भी असीमित नहीं हो सकता था। सहन करने की भी एक सीमा है। जहाँ सहन करने की सीमा खत्म होती है वहीं से प्रतिरोध का स्वर मुखर होता है–'बहुत ही सहज रूप में मैं इस स्थिति में जी रही थी, बिल्कुल निर्बल अबला की तरह। मगर मैंने समय पर अपनी स्थिति को समझा और अपने अधिकार, अपनी सत्ता को खुद अपने हाथों में लिया। इसके लिए मुझे एक लम्बा सफर तय करना पड़ा। मैं अपने रूपयों के खर्च का हिसाब भी देखने लगी, अपना रूपया अपने हिसाब से खर्च करने लगी। अपने मान–अपमान की बात को भी आँकने लगी। महिला मुक्ति आन्दोलन से जुड़ने के बाद मैं अपनी स्थिति, अपने अधिकार और ताकत को समझ सकी।''[22] इसी का परिणाम था कि जब सन् 1989 में बुक हुए 'वैष्णव अपार्टमेन्ट' के फ्लैट की रजिस्ट्री कराने की बात आयी तो पति सुन्दरलाल टाकभौरे ने उसे अपने नाम कराना चाहा, जबकि उस पर सारा पैसा सुशीला के पी0एफ0 एवं लोन से खर्च हुआ था। इसलिए ''जब मैं अपने पी0एफ0 एवं लोन का रूपया दे रही हूँ, तब इस फ्लैट की मालकिन मैं क्यों न बनूं? मैं भी अपने निश्चय पर अड़ गई–''फ्लैट सिर्फ मेरे नाम से खरीदेंगे तभी मैं अपना रूपया दूँगी। नहीं तो एक पैसा नहीं दूँगी। चाहे फ्लैट खरीदो चाहे मत खरीदो।'' तब 1990 में फ्लैट मेरे नाम से खरीदा गया। मुझे स्वंय पर अभिमान हुआ था, मैं इतने बड़े, इतने सुन्दर फ्लैट की मालकिन हूँ।''[23]

सच तो यह कि सामान्यतः एक दलित स्त्री पुरूष सत्तात्मक शिकंजे में जकड़ी रहती है। इन सबसे बावजूद भी उसके धैर्य और श्रम का कोई मुकाबला नहीं है। एक दलित स्त्री की जीवटता, उसकी कर्मठा पर प्रकाश डालते हुए प्रख्यात रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–'एक दलित स्त्री तमाम विपरीत परिस्थितियों में अपने परिवार का उत्तरदायित्व जिस उर्जा और मानवीय सामाजिक सरोकारों के साथ वहन करती है, उसे अनदेखा करना स्त्री के साथ अन्यायपूर्ण कृत्य ही कहा जायेगा। दलित स्त्री किसी भी युग में घर की चारदीवारी में कैद नहीं रही है। उसने पुरूष के

साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर, अपनी सक्रियता से अपने दायित्वों का निर्वाह किया है। उसने श्रमसाध्य कार्यों से लेकर विश्वसनीयता, नैतिकता और वीरता के आदर्श रचे है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में उसने अपनी पहचान बनायी है।''[24] और यह पहचान उसने अधिकाशंतः पुरानी परिपाटियों, रूढ़ियों, आडम्बरों और सड़ी–गली परम्पराओं को नकार कर बनायी है। अतः सही कहती है सुशीला टाकभौरे–'शिकंजे का दर्द' लिखने का उद्देश्य दर्द देने वाले शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है, इसीलिए नई पीढ़ी से उनका यही आह्वान है–

''पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी,
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी।
लपट आने लगी है अब हवाओं में,
ओसारे और छप्पर फेंक दो तुम भी।''[25]

lUnHk %

1. दलित आत्मवृत्त : स्वरूप–विश्लेषण, (लेख), अपेक्षा, सं0 तेज सिंह, अंक 32–33, अम्बेडकरवादी साहित्य आलोचना : आत्मवृत्त पर केंद्रित, जुलाई–दिसम्बर, 2010, पृ0 31
2. वही, पृ0 35
3. मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण–2010, पृ0 117
4. हिन्दी दलित कथा–साहित्यः अवधारणाएं और विधाएं, डॉ0 रजत रानी 'मीनू', अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0)लि0, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2010, पृ0 302
5. शिकंजे का दर्द, डॉ0 सुशीला टाकभौरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2011, पृ0 9
6. मुख्यधारा और दलित साहित्य, पृ0 77
7. शिकंजे का दर्द, पृ0 153
8. वही, पृ0 200
9. वही, पृ0 201
10. वही, पृ0 139
11. वही, पृ0 139
12. साये में धूप, (गजल–संग्रह), दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति–2013, पृ0 23

13. शिकंजे का दर्द, पृ0 223
14. वही, पृ0 143
15. वही, पृ0 164
16. वही, पृ0 165
17. वही, पृ0 168
18. वही, पृ0 10
19. वही, पृ0 143
20. वही, पृ0 216
21. वही, पृ0 117
22. वही, पृ0 221
23. वही, पृ0 222
24. मुख्यधारा और दलित, पृ0 116
25. दुष्यंत कुमार; साये में धूप, पृ0 33

****

og g&vk t knh

Mk0 jkekJ; flg*

प्राचीन साहित्य को यदि हम उठाएँ तो उसमें महान स्त्रियाँ वे हैं जिन्होनें मर्दो की सत्ता को बनाए रखने के लिए बलिदान किया है सती हुई है, युद्ध किये है या जौहर में कूद पड़ी हैं ऐसी एक भी स्त्री आप ढूँढ़कर नहीं ला सकते, प्राचीन और सत्तर तक के साहित्य में जो मर्दों से मुक्त होकर भी महान हो सकती है। यहाँ यह बात बहुत कड़वी लग सकती हैं। लेकिन सच है कि पुरूष साहित्यकारों की नजर में परिवार का दर्जा सबसे ऊँचा रहा है। बल्कि स्त्री के दुःख उनकी आँखो से ओझल हुए रहते हैं। स्त्री के अलग कई दुःख होंगे, स्त्री का स्वास्थ्य कैसा है, बार बार की सन्तान उत्पति से उसकी देह पर क्या बीतती है ये सवाल प्रायः साहित्य से गायब रहे है। बल्कि कहना चाहिए कि जब–जब स्त्रियों को मौका मिला है उन्होंने अपने ऊपर लादे गये गृहस्थी के जुए को उतार फेंका है। यह आज की बात नहीं, ढ़ाई हजार पहले थेर गाथाओं में बौद्ध भिक्षुणियों ने भी लिखा था। यदि इन बातों को ध्यान से पढ़े तो देखते हैं कि ये स्त्रियाँ जिस चीज को प्राप्त कर सर्वाधिक खुश हो रही हैं– वह है आजादी। आजादी सिर्फ अपने पति या पुरूष से नहीं हर किस्म के बन्धन से''।[1]

मर्दों की दुनिया में स्त्री की आजादी का तात्पर्य उसका पति से विमुख हो जाना। कहने का आशय पवित्र और कुलटा हो जाना। कुछ समय पहले तक आजाद स्त्री को खलनायिका के रूप में दिखाने में हमारे सभी माध्यम एक राग अलापते रहे, विशेष रूप से साहित्य भी एक महत्वपूर्ण कड़ी है। जिस परिवार का स्वामी पुरूष है। स्त्री जो घर में रहती है, समय पर खाना पकाती है, बच्चे पालती है, परिवार की मर्यादा बचाती है, मर्यादों मे रहती है, ऐसी स्त्री को महान कहा जा सकता है। दूसरी है साझी सम्पत्ति जिसमें कॉलगर्ल, वेश्याएँ आदि आती हैं अक्सर इन्हें आजाद स्त्री की कोटि में रखा जाता है। जैसा कि आजाद स्त्री माने कुलटा स्त्री। जाहिर है कि पुरूष पचास औरतों के साथ सम्बन्ध रखकर

---

*वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ0प्र0

जिसके द्वारा उनकी सत्ता चलती है। वह अच्छा कहला सकता है। समाज में सम्मान प्राप्त कर सकता है, वापसी कर सकता है, इसके बरक्स स्त्री एक प्रेम करके भी चरित्रहीन कही जा सकती है। समाज की कैसी आजादी है, कि स्त्री की उस छवि को बनाने में न धर्मशास्त्र पीछे है, न ही साहित्य और न ही समाज। स्त्री सबसे अधिक महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि वह पुत्र को जन्म देती है, चूँकि इसके साथ ही साथ कन्यादान सिर्फ एक ही बार किया जा सकता है। हम मर्दवादी विमर्श के उस एकांगीपन को जान सकते है। जिसका कोड़ा औरत की पीठ पर पड़ता हैं।[2] इसलिए विधवा विवाह नहीं किया जा सकता है।

इसलिए थेर गाधाओं की तरह ही जब–जब स्त्री को अपनी बात कहने का मौका मिलता है उसने निडरता से, आजादी के बिना किसी का परवाह किये अपनी पीड़ा को व्यक्त किया है। मध्यकाल में तो मीराबाई सहजोबाई,जनाबाई,रामी महादेवी, अक्का सुलेसनकवा, जंगासती, रतनवाई, आतुऊरी, मौल्ला बहिनाबाई, गुलबदन बेगम, चौन्द्रबौती संथिया होनम्मा आदि। वे स्त्रियाँ है जो पूरे भारत की है। अपनी अपनी भाषा में इन्होंने अपने दुःख व्यक्त किये है। ज्वलन्त उदाहरण के रूप में जहाँ पुरूष रचनाकार इस लोक को छोड़कर परलोक के सपने देखते थे वहीं स्त्री रचनाकारों ने इसी लोक में व्याप्त रूढ़ियों के खिलाफ मोर्चा खोल दिया। क्योंकि इन रूढ़ियों का सबसे पहला शिकार वे ही होती है। मीराबाई ने यदि राजमहल छोड़ दिया तो दूसरी ओर चौदहवी–पन्द्रहवी सदी में गुजराती में गंगासती रतनबाई और मराठी में जनाबाई ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों, विसंगतियों, असमानता के खिलाफ विद्रोह किया और तो और बंगाल में रामा निम्न जाति में पैदा हुई लेकिन उन्हें वैष्णव कवि चंडीदास से प्रेम हो गया। जैसा की चंडीदास की रचनाओं में समाज में फैली जाति प्रथा की धोर आलोचना मिलती है। इसी तरह जनाई शुद्र थी। सात साल की उम्र से ही वह एक घर में दासी का काम करती थी। उन्होंने कहा–

हाथ में मंजीरे, कन्धे पे वीणा, कौन मुझे रोकने कि हिम्मत
कर सकता है,
साड़ी का पल्लू गिर जाता है,।
हजार बाते बनाते है लोग, किन्तु मैं जाऊँगी भरे बाजार में
निःसंकोच, निडर।[3]

जनाबाई की हिम्मत, साहस, धैर्य को हम'' वह है आजादी के रूप देखा जा सकता है। स्त्री होकर समाज को किस कदर चेतना देती है। इसी तरह चौन्द्रबौती ने बाँग्ला भाषा में रामायण– लिखी थी। रामायण के माध्यम से सीता की भूरि–भूरि प्रशंसा की गइ है। जबकि राम के कमजोर पति और डरपोक बेटा की संज्ञा दिया गया है। उन्होंने पुरूषोत्तम राम की निन्दा की। ऐसे कानून का विरोध किया जो लोगों पर जुल्म ढाते थें। उन्होंने आजीवन (आजन्म) अविवाहित रहने का प्रण किया। मध्यकाल में हर स्त्री घर–बार छोड़कर नहीं चली गई। दहेज के लिए आज तक औरतें मारी जाती है। महिलाओं की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार रूढ़ियों, परम्पराओं, जातिप्रथा का विरोध नही होता। विरोध भी होता है तो कोई सार्थक पहल नहीं किया जाता है। बल्कि सही मायनों में देखा जाये यह उन्नीसवीं सदी रही थी जब महिलाओं की आजादी की समस्याओं की तरफ पुरूषों का ध्यान गया। महाराष्ट्र में महादेव गोविन्द रानाडे, बेहराम जी, केशव कर्वे ज्योतिबा पुल, सावित्री बाईफुले, गोपालकृष्ण गोखले आदि ने महिला शिक्षा और आजादी का जोरदार समर्थन किया। कहने का अर्थ यह है कि महिलाओं ने जब कलम चलाई तब अपनी दुर्दुशा के बारे में लिया आजादी की बात नहीं लिख सकती थी। क्योंकि उन्नीसवीं सदी में ही भारत की महिलाओं के मन में वे प्रश्न (हमें वह है– आजादी) उठने लगे थे जिनका जवाब पुरूष प्रधान समाज के पास नही है। महिलाओं ने शिक्षा और राजनीति अधिकारों की माँग की। उधर सुधारवादी महिलाओं को कुछ अधिकार देना चाहते थे लेकिन महिलाओं की आजादी के बारे में वे एकमत .नही थे। सन् 1858 से 1905 के नवजागरण काल में सावित्री बाईफुले ने महिला सशक्तीकरण की दिशा में एक अद्‌भूत प्रयास किया। एक तरफ नवजागरण काल, दुसरी तरफ आजादी का संघर्ष महात्मा गाँधी ने आजादी की लड़ाई में महिलाओं को जोड़ा और उन्हें आजादी की शक्ति दी। इसीलिए आजादी की लड़ाई में बड़ी संख्या में औरतें सामने आई। वे इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं।

स्त्रियों की दशा को लेकर बीसवीं सदी के मध्य में महादेवी वर्मा ने अपनी लेखनी के माध्यम से जैसा लिखा शायद ही कोई और लिखे एक पुरूष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरूष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध को उत्साह हो जाता है। और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड भी अधिक भारी बनाए बिना नही रहती।[4] यही कारण है कि सबसे दयनीय दशा स्त्रियों

की है। बेचारी स्त्रियों को संदेहों का भँवर अविनयों का भवन, दुःसाहसों का नगर दोषों की अक्षय निधि, सैकेड़ों कपटों वाली, स्वर्गद्वारा का विधान, अविश्वासों की जन्मभूमि, नरकपुरी के द्वारा, मायाओं की पेटी, ऊपर से अमृतमय और भीतर से विषमय तथा प्राणियों को बाँधने का पाश कहा गया है।[5] लेकिन आजादी के बाद महिलाओं की साक्षरता बढ़ी।सन् 1961 में दहेज विरोधी कानून बना। मूल्य वृद्धि से लेकर पर्यावरण बचाओं आन्दोलन की अगुवाई महिलाएँ करती है। एक तरफ महिलाएँ शिक्षित, साक्षर, आत्मनिर्भर, होती है, दूसरी तरफ उन्हे गर्भ में ही मारने के लिए अमीनों सेंटोसिस और अल्ट्रासांउड ईजाद कर लिए जाते है। मैडम भीकाजी कामा जिन्होंने फ्राँस से वन्देमातरम् अखबार निकाला। सरोजिनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, लक्ष्मी सहगल, दुर्गा भाभी राजकुमारी अमृत कौर, नेनी सेन गुप्ता, अनसूया साराभाई आदि न जाने कितनी महिलाएँ थीं। जिन्होंने महिलाओं की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। आज की स्त्री हमें og g' vkt kn h की माँग करती है, स्त्री आजादी हो जायेगी तो मेरा मानना है कि उसके बराबरी में पुरूष कहीं नही टिक सकर्ता। यह सत्य है कि मध्ययुग बिलासी सामन्तों के किए सुराही और प्याला के साथ सुबला भी विलास का मसाला बन गई थी। शक्ति और शैर्यपूर्ण सामन्तों के लिए भी वह खड़ग की चेरों के अतिरिक्त और कुछ नहीं थी।[6]

धीरे–धीरे स्त्री के प्रश्न मुखारित होते है जाने माने कवि रधुवीर सहाय बहुत पहले लिखे है– पढ़िए गीत, बनिए सीता, फिर इन सबको लगा पलीता, जिस घर बार बसाइए, होएँ कटीली, आँखे गीली, तबियत ढीली, घर की सबसे बड़ पतीली भरकर अन्त पकाइए।

कविता कहानियों उपन्यासों में स्त्रियाँ आती है जैसे–कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, पद्मा सचदेव, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, मृणाल पाण्डे, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, गीतांजलि श्री, मनीषा, जयंती आदि महिला मुद्दों पर अपनी कलम चलाने लगती हैं। स्त्रियों सम्बन्धी आजादी जैसे मुद्दों पर बहस होने लगती हैं अरविन्द जैन की पुस्तक'' औरत होने की सजा के आठ संस्करण छपते ही उन्हीं की पुस्तक पुत्राधिकार बनाम उत्तराधिकार और औरत अस्तित्व और अस्मिता भी रातों रात बिक जाती है। स्त्री की अपनी संस्कृति है। इतिहास में इसे मित्र माना जा रहा है। लेकिन इसे अलग पहचान नही दी गई चूँकि अलग से स्त्री शक्ति की सत्ता नही थी इसलिए स्त्री सत्ता

को अलग पहचान ही नही मिली। आज स्त्रियाँ लिंग भेद महिलाओं पर हिंसा, निजी कानून में संशोधन महिला स्वास्थ्य तथा आर्थिक दशा आदि में सुधारों के मुद्दे पर जूझ रही है। स्त्रियों की अगामीधारा में जोड़ने में महिला आन्दोलन ने प्रमुख भूमिका निभाई है। आज साहित्य में महिला आन्दोलन द्वारा उठाये गये मुद्दे प्रमुखता से उभर रहे है[7] जैसे–''घर में बुर्का बाजार में बिकिनी'' यह बात तो सच है कि मर्दवादी विमर्श अपनी पत्नी, माँ बेटी और बहन को तो पर्दे में रखना चाहता है दूसरी स्त्रियों को वस्तुहीन बहुराष्ट्रीय निगमों ने भी स्त्रियों को ब्रांण्ड में परिवर्तित कर दिया है लेकिन आज तक स्त्री को पीटने का हथियार उसका शरीर लज्जा और शील रहा है।सारे गुण वे है जो मर्दो की बनाई संस्कृति वे उन्हें सौप दिया। अपसंस्कृति की बहस स्त्री के शरीर से होती हुई वहीं खत्म हो जाती है। स्त्री के व्यक्ति, व्यक्तित्व, और बौद्धिक विकास में पुरूष (पिता, पति, पुत्र) अक्सर खलनायक की भूमिका में क्यों दिखाई देते है? स्त्री परिवार या विवाह संस्था से बाहर स्वतन्त्र रूप से सम्मानजनक जीवन क्यों नही जी सकती? विवाह के अलावा क्या और कोई विकल्प नहीं, क्या हो ही नही सकता? क्या औरत को हमेशा रक्त या यौन सम्बन्धों और सम्पत्ति के समीकरणों में ही जाना पहचाना जाएगा? उसकी न कोइ अपनी आजादी है और न कोई स्वतन्त्र निर्णय। मौजूदा परिवार के सड़ते मनुवादी ढाँचे और अधिक लम्बे समय तक बचा पाना सर्वथा असम्भव ही नही बेहद खतरनाक भी है। स्त्री सिर्फ सुन्दर धड़ होनी चाहिए (सिर हो तो काटकर फेंक दो–बेकार के प्रश्न करेगा) एक विवाह या सम्बन्ध के सारे प्रतिबन्ध सिर्फ स्त्री के लिए पुरूष के लिए व्याभिचार की खुली वैधानिक रखैल, रक्षिता, वैश्या, कॉलगर्ल, सब उसी के आनन्द की संस्था है।''[8]

बींसवी सदी के आरम्भ से लेकर अब तक अदालत, कानून और न्याय की भाषा परिभाषा मूलतः स्त्री के प्रति अविश्वास घृणा और अपनों से उपजी भाषा है :– न्यायालयों में जहाँ न्याय अन्धा होता है। वहाँ किस कदर मर्दवादी विमर्श मौजूद है। घर–घर, गली–गली, कस्बे–कस्बे लड़कियाँ छटपटा रही है। वे किसी जाहिल के गले से बाँध दिये जाने के लिए। विवाह लड़की के लिए भारत में अंतिम सत्य की तरह हैं विवाह के बाजार में बैठा दी जाती है। लड़की की माँग उसकी खूबसूरती और उसके पिता की भारी भरकम से तय होती है। आखिरकार ऐसा कब तक होता

रहेगा? कब तक गुलामी सहती रहेगी? हमें वह आजादी चाहिए। मेरा देश भारत एक किंवदन्ती हैं, इसमें कहीं इसकी असल कहानी अटकी रह गयी है। इसका इतिहास है, परम्पराएँ, है। यहाँ लोग है तमाम लोग। इन लोगों पर राज्य करती, सरकारें है नेताओं का देश प्रगति कर रहा है रिपोर्ट छाप रहा है। यह उनका देश है। मेरे देश में न पानी है न हवा, न आसमान—वे काट रहे है अपनी जेबों में भर रहे है मुँह और पेट में ठूस रहे है हमें तो वह है आजादी चाहिए, हमें तो वह आजादी चाहिए। इन गुलामों को आजादी कब मिलेगी यह आजादी तब तक अधूरी है जब तक हम अपने देश की महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा नही कर सकते। इसके तमाम गुनाहगार है वे भी जो तथाकथित आजादी के नाम पर लड़ाइयाँ लड़ रहे है।

lUnHkZ %

1. शर्मा, क्षमा; स्त्री विमर्शः समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद पृ0 101
2. शर्मा, क्षमा; महिला सशक्तिकरण में साहित्य की भूमिका, पृ0 102
3. वही; पृ0 102, 103
4. वही; पृ0 104, 105
5. भतृहरि; श्रृगांर शतक, श्लोक 76 (मध्ययुगीन काव्य साधना रामचन्द्र तिवारी)
6. तिरिया पुहुमि खरग की चेरी, जीते खरग होई तेहि केरी— पदमावत 618/4
7. शर्मा, क्षमा; महिला सशक्तीकरण में साहित्य की भूमिका, पृ0 105
8. शर्मा, क्षमा; स्त्री विमर्शः समाज और साहित्य, पृ0 147

****

ukjh ds mRFkku esa ckS) /keZ n'kZu dh Hkwfedk

MkO l|Hkk"k pUnk*

नारी की स्थिति ही किसी समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का सच्चा मापदण्ड है। भारतीय सभ्यता व संस्कृति नारी मात्र का सम्मान करने की प्रबल पक्षधर रही है और उसका आदर्श वाक्य ही यह है कि ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''[1] अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा की जाती है वहाँ देवता रमते हैं। भारतीय संस्कृति का नीति–निर्धारण नियम है–मातृवत् परदारेषु[2] तात्पर्य यह है कि परायी स्त्री के प्रति अपनी माता की भाँति भावना होनी चाहिए। मानव जीवन–पद्धति में नारी विधाता की सर्वोत्तम रचना है। सृष्टि में नारी का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्पष्ट रूप से सृष्टि के विकासक्रम में नारी का स्थान सर्वोपरि है। ऋग्वेद में भारतीय नारी को सूनृता अर्थात मधुर एवं सत्य वचन की प्रेरक तथा सुमति अर्थात अच्छी सम्मति देने वाली सद्‌गुणों से सम्पन्न बताया गया है।[3] भारतीय समाज में मातृत्व का आदर है। सर्वनियन्ता की शक्तियों का लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, काली आदि नारी रूपों में ही वर्णन किया गया है। इस प्रकार भारत में नारी शक्ति, धन, ज्ञान की प्रतीक मानी गई है। अपने देश को हम ''भारतमाता'' कहकर उसके प्रति आदर प्रकट करते हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी व्यवहारिक रूप में भारत में नारी की स्थिति विभिन्न कालों में उठती और गिरती रही है।

भारतीय संस्कृति के विकास क्रम को यदि देखा जाय तो वैदिक काल में नारी की पुरूषों के समकक्ष स्थिति के संकेत मिलते हैं। नारी स्वतंत्रतता, नारी शिक्षा, यज्ञों में नारी की सहभागिता आदि के अनेक दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। यद्धपि वैदिक समाज पितृसत्तात्मक था। जिसके कारण परिवार में पिता का स्थान सर्वोच्च था। सामान्यतः नारी परिवार में

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, युवराजदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुर–खीरी, उ0प्र0

माता–पिता, भाई–बहन, पति–पुत्र आदि के साथ रहती थी तथा परिवार प्रमुख की आज्ञा एवं उसके अनुशासन का पालन करती थी। उत्तर वैदिक काल में सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के अतिरिक्त संहिता, ब्राह्मण, आरण्य उपनिषदों की रचना हुई। इस काल में समाज विभिन्न क्षेत्रों में विकास की श्रृंखलाएँ पार करता हुआ आगे बढ़ता गया। नारी की स्थिति में भी आगे चलकर अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए। संक्षेप में, वैदिक काल से लेकर बुद्ध के आर्विभाव के पूर्व काल तक नारी को सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर मिले अधिकार धीरे–धीरे कम होते गये। बुद्ध के जन्म के समय तक पुरूष प्रधानता व पितृसत्तात्मकता भारतीय समाज के मुख्य स्तम्भ बन चुके थे जिसमें परिवार जैसे एक सामाजिक ढाँचे के माध्यम से नारी को नियंत्रित व सुरक्षित रखना अति आवश्यक माना जाने लगा था। लड़की का जन्म न केवल अनइच्छित, बल्कि दुर्भाग्यपूर्ण माना जाने लगा था। पुरूष नारी को अपनी सम्पत्ति समझने लगा था। साथ ही नारी को शिक्षा के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया था। बहु विवाह एवं सती प्रथा का प्रचलन धीरे–धीरे आरम्भ हो गया था।[4] हरम व वेश्यावृति जैसी कुरीतियाँ सामाजिक जीवन का अंग बन चुकी थी। नारी की पिटाई आम बात थी और ऐसी नारी को आदर्श माना जाता था। जो पुरूष के सामने स्वयं को समर्पित कर उसे पूजती थी। नारी को सुविधानुसार खरीदा और बेचा भी जाने लगा था। बाल–विवाह का प्रचलन शुरू हो गया था। सामान्यतः बौद्व धर्म–दर्शन के उदय के पूर्व सामाजिक व्यवस्था में अब नारी का स्थान सम्मानजनक नहीं रहा था।

बुद्ध द्वारा प्रतिवेदित धर्म एवं दर्शन संयम और साधना का एक मार्ग है। भले ही कोई नारी हो या पुरूष हो यह प्रत्येक व्यक्ति को एक सम्पूर्ण समष्टि मानकर चलता है[5] इसीलिए बौद्व धर्म–दर्शन पुरूष और नारी के बीच उस सम्बन्ध के विवाद में नही पड़ता जिसके अनुसार नारी पुरूष के जीवन की पूरक है। बुद्ध ने मानवता का आदर्श प्रस्तुत करते हुए नारी को भी पुरूष की भाँति धर्म एवं समाज में सम्मानित स्थान प्रदान किया। बुद्ध समाज में मानव के उत्पीड़न, शोषण तथा वैमनस्यपूर्ण व्यवहार के विरूद्व थे। उन्होंने जाति, लिंग, अर्थ आदि के आधार पर किये जाने वाले सामाजिक भेदभाव को आलोचना की तथा पीड़ित लोगों एवं महिलाओं को सम्मानपूर्ण स्थान

दिलाने का प्रयास किया। बौद्व साहित्य में नारी के लिए माता शब्द का प्रयोग किया गया है। माता शब्द नारी के लिए सम्मान सूचक है। प्रस्तुत सन्दर्भ में प्रजापति गौतमी के लिए यह प्रसंग उल्लेखनीय है कि ''उसने गौतम सा पुत्र जना जो अपने प्रयत्न से लोक में सम्यक बुद्ध हुआ।[6] नारी सम्मान के लिए ही बुद्ध ने वज्जियों को गणराज्य के कल्याणकारी कार्यों के लिए जो सात नियम बताये थे उनमें एक नियम यह था कि ''नारी के मान की रक्षा करनी चाहिए। विवाहित या अविवाहित नारी पर किसी भी प्रकार के अत्याचार नहीं होने चाहिए और न ही उसके साथ बलात्कार होना देना चाहिए[7] अर्थात् बुद्ध ने समाज और राज्य व्यवस्था में नारी के महत्व को स्थापित किया।

धार्मिक दृष्टि से बुद्ध ने भिक्षु संघ की भाँति भिक्षुणी संघ की स्थापना की। उन्होंने नारी को भी बुद्ध धर्म की प्रवज्या दी एवं उनके लिए भी निर्वाण के एवं सम्बोधि का मार्ग प्रशस्त किया। निर्वाण की प्राप्ति के बाद अनेक भिक्षुणियों के उदान थे'' विष अमृत कर डाला[8] अर्थात् जो तत्कालीन समाज में नारी होना दुःख माना जाता था, बुद्ध की शरण में आकर नारी ने भी भिक्षुणी के रूप में यह सिद्ध कर दिया कि दुःख के विनाश का मार्ग उन्हें ज्ञात है जीवन की अनेक विषमताओं पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली है। नारी में भी पुरूषार्थ है। वे निराशावादी नहीं है। उनके जीवन में भी निराशावाद का अन्त है। अनेक बौद्ध भिक्षुणियां तो बुद्ध की शरण पाकर गर्व से कहती थी कि '' अहो मैं बुद्ध की कन्या हूँ, उनके मुख से उत्पन्न एवं उनके हृदय से उत्पन्न अर्थात् बौद्ध धर्म में नारी का जीवन गौरवमयी था। नारी भी पुरूषों की भाँति सत्य को प्राप्त कर सकती है। नारी में भी सम्यक दर्शन करने की शक्ति है। बुद्ध की शिष्याओं में कई ऐसी महिलायें थी जो मानवीय अस्तित्व के दुःखों से पूर्ण मुक्त होकर अर्ह बनी थी। यह मानने के पर्याप्त प्रमाण है कि बुद्ध काल में महिलायें भिक्षुणी संघ की सर्वेसर्वा थी। वे शिक्षक सक्रिय कार्यकत्री, धर्म–प्रचारक, आदि रूपों में निपुणता के साथ कार्य करती थी।

बौद्ध धर्म–दर्शन ने महिलाओं को विद्यमान ब्राह्मणवाद की तुलना में अधिक अच्छे अवसर प्रदान किये।[10] भिक्षुणी संघ के माध्यम से नारी के

पास अब अपनी पारिवारिक भूमिकाओं के स्थान पर एक विकल्प भी उपलब्ध था। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि भिक्षुणी संघ की स्थापना से बुद्ध ने महिलाओं को जिस स्तर पर धर्म परायणता का अवसर प्रदान किया वह विश्व के इतिहास में आने वाले लम्बे समय तक एक अद्वितीय बात रही है। बुद्ध महिलाओं के साथ उनके व्यक्तित्व के आधार पर व्यवहार करते थे। सैद्धान्तिक रूप में वह नारी को पुरूषों के समान ही समझते थे यद्यपि इस प्रकार की स्थिति सीमित क्षेत्रों तक थी। समाज के अन्दर विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों की ओर बुद्ध का ध्यान इतना नहीं गया जितना नारी को मिलना चाहिए था। फिर भी यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि संघ में प्रवेश पाने से नारी को अपनी योग्यता सिद्व करने का एक अच्छा अवसर मिला। नारी अब अपने भविष्य को संघ के माध्यम से सुधार सकती थी। भिक्षुणी संघ बन जाने के बाद बौद्ध बिहारों एवं मठों में तत्कालीन सुलभ शिक्षा व्यवस्था का भी लाभ नारी को सरलता से मिलने लगा था। इस प्रकार बौद्ध काल में नारी के लिए संस्थागत सामूहिक शिक्षा व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त हो गया था। उपरोक्त सन्दर्भ में आगे चल कर हम देखते है कि बौद्ध समाज के उदार श्रेष्ठी जनों के सौजन्य से 'आरामों' का निर्माण हुआ और उन्हें भिक्षु–भिक्षुणी संघ को दान में उपलब्ध कराया गया[11] इन्हें ''संधाराम''[12] की संज्ञा दी गई। इन्हीं संघारामों में भिक्षु और भिक्षुणियों की अलग–अलग शिक्षा व्यवस्था का शुभारम्भ हुआ। भिक्षुणी शिक्षा के रूप में नारी शिक्षा का संस्थागत सामूहिक प्रारम्भ इन्हीं बौद्ध संघारामों में बौद्ध व्यवस्था के अर्न्तगत हुआ। इन संघारामों में भिक्षुणी स्त्रियों की कक्षा, एक महिला उपाध्याय, आचार्य भिक्षुणी तथा सामने पढ़ने वाली अंतेवासी भिक्षुणी के रूप में नारी सिद्धिविहारिकायें हुआ करती थी। संघाराम द्वारा दी जाने वाली नारी शिक्षा व्यवस्था में भिक्षुणी सिद्ध विहारिकाओं के लिए कुछ निषिद्व कर्म भी थे जिनका पालन करना अनिवार्य था[13] यद्यपि बौद्ध धर्म दर्शन में नारी भिक्षुणियों को शिक्षा का अपने विषय में स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि नारी के सबसे बड़े शत्रु परिवार, विवाह और पुरूषों द्वारा थोपे गये पितृसत्तात्मक कठोर नियम थे। जिनके तहत उनका शोषण किया जाता था। लेकिन यह तथ्य कोई न्यून उपलब्धि नहीं

है कि बौद्ध धर्म–दर्शन ने नारी को स्वतंत्र रूप से शिक्षा का अधिकार देकर न केवल मुक्ति पाने बल्कि उन्हें सम्मानित पद एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने का अवसर भी दिया। अपने धर्म के प्रचार प्रसार के सन्दर्भ में बुद्ध का सम्पर्क समाज के विभिन्न वर्ग की नारियों के साथ हुआ था। इनमें यशोधरा, नन्दा, खेमा, प्रजापति गौतमी, आम्रपाली धर्मदत्ता सुप्रिया तथा विशाखा प्रमुख है। ये सभी महिलायें अपने समय की प्रतिष्ठित तथा अपने व्यवसाय वर्ग एवं पारस्परिक सम्बन्ध की प्रतिनिधि हैं। उदाहरण के तौर पर यहाँ विशाखा का प्रसंग उल्लेखनीय है। विशाख एक श्रेष्ठि की पुत्री थी। इसने अपना धन बौद्ध संघ को दान में दिया था जिससे श्रावस्ती में 'पूर्वाराम' बिहार का निर्माण हुआ था। बुद्ध प्रायः इसी विहार में विश्राम करते थे। विशाखा बौद्ध संघ की संरक्षिका बन गई थी। इसी प्रकार भिक्षुणी खेमा उच्चशिक्षित थी जिसकी विद्वता की ख्याति दूर–दूर तक फैली थी।[15] सुभद्रा नामक भिक्षुणी व्याख्यान देने में प्रसिद्ध थीं।[16] ये उद्धरण इस बात के प्रमाण है कि नारी में असाधारण क्षमता है तथा वह पुरूषों के सामान सभी क्षेत्रों में सम्मान के साथ कार्य अपना उत्थान कर सकती थी। जो आज भी प्रासंगिक है।

lUnHkZ %

1. मनुस्मृति, 3/56
2. चाणक्य नीतिदर्पण, 12/13
3. ऋग्वेद 1/3/11
4. घोष, एन0एन0. 1960; अर्ली हिस्ट्री आफ इन्डिया, द इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, पृ0–38
5. कौशल्यायन, भदन्त आनन्द. 1989; बौद्व धर्म का सार, अनु0,सिद्वार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, अलीगढ़, पृ0 123
6. उपाध्याय, भरत सिंह. 1986; बुद्व और बौद्व साधक, साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई–दिल्ली, पृ0 110
7. कौशाम्बी, धर्मानन्द, भगवान बुद्ध जीवन और दर्शन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967, पृ0–84
8. उपाध्याय, भरत सिंह, थेरी गाथा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1967, वस्तुत कथा से अवतरित।
9. वही; वस्तुत कथा से अवतरित।

10. शर्मा, अरविन्द. 1987; वोमेन इन वर्ल्ड रिलीजन्स, स्टेट यूनीवर्सिटी आफ न्यूयार्क, अलबानी, पृ0–16
11. चुल्लवग्ग, 6/5/1
12. मिश्र, डॉ0 जयशंकर. 1983; प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ0 845
13. महावत्थु टीका, 5/4/2
14. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, वही, पृ0 833
15. वही, पृ0 418
16. वही, पृ0 418

****

Ekfgyk l'kDrhdj.k vkj Hkkjrh; dkuu

jeu iidk'k*

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में विश्व की महिलाओं के सामने जीवन और अस्तित्व से सम्बन्धित उनके सवाल एवं सरोकार, संघर्ष और चुनौतियाँ खड़ी हैं। अशिक्षा, घरेलू हिंसा, भ्रूण हत्या, बलात्कार, अपहरण, हत्या आदि से जूझती हुई महिलाओं के लिए सरकारी एवं गैर–सरकारी योजनाएँ/नियम /कानून बनकर भी बेअसर है। समाज के सभी क्रियाकलाप चाहे वे सामाजिक हो या सांस्कृतिक, कोई उत्सव हो या त्योहार, बिना स्त्री की उपस्थिति के पूर्ण नहीं हो सकता। भारतीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति और भूमिका बहुत कुछ समाज के स्वरुप और विशेषताओं पर निर्भर करती है। समाज में होने वाले विकास जैसे– नगरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण आदि महिलाओं की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करते है।

महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए शिक्षा एक सशक्त माध्यम हो सकती है। महिला शिक्षा को दो भागों में बाँटा जाये–प्रारम्भिक साक्षरता और कार्यात्मक साक्षरता। प्रारम्भिक साक्षरता कार्यक्रम से अधिक से अधिक ग्रामीण महिलाओं को जोड़ा जाना चाहिए। जिससे ग्रामीण महिलाएँ देश के विकास में अपना योगदान दे सकें।

भारतीय महिलाओं को प्रोत्साहित करने और विकास की ओर ले जाने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारें एवं स्वयंसेवी संस्थाओं ने विभिन्न प्रकार के महिला कल्याण कार्यक्रम प्रारम्भ किए। महात्मा गाँधी भी महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार देने के पक्षधर थे। महिला सशक्तीकरण के लिए भारतीय संविधान में अनेक प्रावधान किये गये हैं। जहाँ मूल अधिकारों में समता और समानता का जिक्र है तो नीति–निर्देशक तत्वों में सभी के आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों का भी जिक्र किया गया है।महिलाओं के सर्वांगीण विकास हेतु कई योजनाएं चलायी गयी हैं यथा –

*असि0 प्रो0, भूगोल विभाग, भारतीय महाविद्यालय,फर्रुखाबाद, उ0प्र0

ग्राम योजना, आयुष्मती योजना, कल्पवृक्ष योजना, महिला डेयरी परियोजना, न्यू मॉडल चर्खा योजना, स्वयं सिद्ध योजना, स्वशक्ति योजना, बालिका समृद्धि योजना, स्वधारा योजना, सुकन्या योजना आदि।

लम्बे समय से महिलायें ही समाज के दबे–कुचले वर्ग का हिस्सा रही हैं। उन्हें गरिमा के साथ जीवन जीने के लिए कानून सशक्तीकरण करता है। कार्यस्थल पर, घर और जीवन के हर स्तर पर कानून उनका संरक्षण करता है। कार्यकारी महिलाओं को विभिन्न स्तरों के कार्यस्थलों में संरक्षण एवं सशक्तीकरण के अनेक प्रावधान व उपाय भारतीय कानून व्यवस्था में किये गये हैं–

लम्बे समय से महिलायें ही समाज के दबे–कुचले वर्ग का हिस्सा रही हैं। उन्हें गरिमा के साथ जीवन जीने के लिए कानून उनका सशक्तीकरण करता है। कार्यस्थल पर, घर और जीवन के हर स्तर पर कानून उनका संरक्षण करता है। कार्यकारी महिलाओं को विभिन्न स्तरों के कार्यस्थलों में संरक्षण एवं सशक्तीकरण के अनेक प्रावधान व उपाय भारतीय कानून व्यवस्था में किये गये हैं–

1- lkbcj oYM vkj efgyk lqj{k.k& जेंडर साइबर अपराध भी जेण्डर आधारित भेदभाव का एक रुप है। यह वह अपराध है जिसे महिलाओं को सिर्फ इसलिये भोगना पड़ता है कि वे कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि महिला हैं। भारत में अभी हाल तक इंडियन पीनल कोड की धारा 509 के तहत की गयी व्यवस्था साइबर अपराध के लिए लागू थी। इसके तहत किसी महिला के सम्मान को नुकसान पहुँचाने के लिए हाव–भाव दर्शाना या कोई चीज दिखाना या किसी महिला की निजता तोड़ना दंडनीय माना गया। आज के तकनीकि युग में मोबाइल भी महिला सुरक्षा में अपनी भूमिका को कहीं हद तक सार्थक बना रहे है। कई मोबाइल एप्स जैसे – हिम्मत एप्स, सक्रिल आफ 6 एप्स, निर्भया एप्स, न्यू डेल्ही सिटी गाइड, डेल्ही मेट्रो नेविगेटर आदि महिलाओं की रक्षा में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

2- dk;LFky ij efgyk lqj{k.k& कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न एक्ट महिलाओं का सहयोगियों, मातहतों और वरिष्ठों द्वारा किए जा सकने वाले उत्पीड़न से संरक्षण करता है। प्रत्येक कम्पनी या उद्योग या संस्थान के लिए

कानूनी तौर पर अनिवार्य है कि वह अपने स्तर पर शिकायत समिति का गठन करें ताकि महिला कर्मियों की शिकायत को प्राप्त करके उनकी तकलीफों को यथासम्भव दूर किया जा सके।

3- ?kj ij efgykvk dk lj{k.k& डोमेस्टिक वायलेंस एक्ट घर में महिला के गरिमा और प्रसन्नचित रहने के अधिकार को सुनिश्चित करता है।

4- bfM;u iuy dkM d rgr efgykvk dk ikIr lj{k.k & इंडियन पेनल कोड महिलाओं को विभिन्न तरह के यौनिक हमलों से बचाने में सहायता करता है। किसी महिला के सम्मान को ठेस पहुँचाने वाली हरकत या महिला के प्रति किया गया कोई अप्रिय हाव–भाव इस कानून की धारा 354 के तहत दंडनीय अपराध है। इंडियन पेनल कोड में उल्लिखित अन्य धाराएँ भी हैं।

5- efgykvk ij rtkc geyk & आईपीसी की धारा 326ए के तहत महिलाओं पर तेजाबी हमलों की घटनाओं में सजा का प्रावधान है। इसी तरह सार्वजनिक तौर पर किसी महिला को वस्त्रहीन करने पर धारा 354बी के तहत दंडनीय अपराध करार दिया गया है।

6- fuHk;k ,DV & बलात्कार कानून की परिभाषा में कुछ बेहद जरुरी बदलाव इस एक्ट की विशेषता है। प्रोहिवेशन ऑफ चिल्ड्रेन फ्रॉम सेक्सुअल ऑफेंसेज एक्ट 2012 के साथ किसी विवाद की स्थिति से बचते हुए रेप शब्द को अभी उल्लेख में रखा गया है। इस एक्ट की मुख्य बात यह भी है कि पेनिट्रेशन की स्थिति में शारीरिक रुप से अपना बचाव न कर पाने वाली महिला के लिए यह बात नहीं कही जा सकेगी कि इस प्रकार की हरकत में उसकी सहमति थी।

उपर्युक्त कानूनी प्रावधानों के अतिरिक्त अनेक केन्द्रों में जेंडर सेंसिटाइजेशन कार्यक्रम चलाया जाता है। यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसमें विभिन्न आयु समूह, वर्ग, जाति, पेशों के लोगों, महिला, पुरुष लड़कियों और लड़कों को दो लिंगों के बीच बुनियादी अंतर को बताया जाता है और यह ज्ञान कराया जाता है कि जैविक रुप से साधारण दो जीवों के बीच समाज किस प्रकार से भेदभाव बना देता है। इसके अलावा, लक्षित

आयु वर्ग के लोंगों को कुछ बुनियादी मुद्‌दों के बारे में बताया जाता है जैसे कि युवतियों को इस बाबत जानकारी दी जाती है कि कार्यस्थल पर उनके साथ यौन उत्पीड़न किए जाने की स्थिति में उन्हें क्या करना चाहिए।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में महिलाएँ एक लम्बे समय से यातना और शोषण का शिकार रही हैं। प्रचलित रीति–रिवाज भी उनके उत्पीड़न में सहायक रहे है। लेकिन उन्हें समाज में वांछित स्थान दिलाने हेतु अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। महिला सशक्तीकरण के लिए बनाये गये तमाम सरकारी नियम/कानून तब तक सार्थक सिद्ध नहीं होंगे जब तक समाज के संपूर्ण सोच, रवैये और पूर्वाग्रहपूर्ण धारणाओं में बदलाव नहीं होगा।

lUnHk %

1. सिंह, डॉ0 निशांत, 2010; महिला राजनीति और आरक्षण, ओमेगा पब्लि0, नई दिल्ली
2. कुमार, राधा 2005; स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. त्रिपाठी, प्रो0 मधुसूदन, 2010; महिला विकासः एक मूल्यांकन, ओमेगा पब्लि0, नई दिल्ली
4. सिंह, करण बहादुर; महिला अधिकार व सशक्तीकरण, कुरुक्षेत्र, मार्च 2006
5. Miriam schnerr (ed)1995; The Vintage Book of Feminism

****

efgykvk dk l'kDr cuku e
f'k{kk dh Hkfedk

MkW0 lR;uke*

प्रस्तुत लेख में हमारी कोशिश नारीवाद और महिला सशक्तीकरण में भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने की है और मौजूदा समस्याओं का इस आधार पर विश्लेषण करने और इसके साथ निराकरण हेतु महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में शिक्षा की भूमिका को उजागर करना है। स्त्री सदैव ज्ञान की सरिता प्रवाहित कर जनमानस के ह्रदय को पावन करती रही है। क्या हमने नारी का सम्मान करके उसकी शिक्षा–दीक्षा की व्यवस्था की है इसका उत्तर स्वामी विवेकानन्द जी इस प्रकार देते है–

"उस परिवार अथवा देश के लिए उन्नति की कोई आशा नहीं है, जहाँ स्त्रियों का कोई सम्मान नही है, जहाँ वे दुखमय रहती है।"[1]

इस प्रकार शिक्षा देकर ही पुरूष नारी का सम्मान कर सकता है। राधाकृष्णन ने कहा है–"स्त्रियाँ मानव है और उस रुप में उन्हें अपने पूर्ण विकास का उतना ही अधिकार है जितना कि पुरुषों को।"[2]

अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज में महिलाओं व उनके निर्णयों को उचित सम्मान मिले और यह सम्मान महिला सशक्तीकरण के द्वारा ही मिल सकता है और महिलाओं को सशक्त बनाने का सबसे अच्छा माध्यम है ''शिक्षा''।

efgyk l'kDrhdj.k dk vFk

1. महिला सशक्तीकरण की पहल 1985 में महिला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन नैरोबी में की गई।
2. नारी उत्थान प्रक्रिया संयुक्त राष्ट्रसंघ ने वर्ष 2000 को विश्व महिला वर्ष मनाया।

*वरिष्ठ प्रवक्ता, वाई.डी.पी.जी. कालेज, लखीमपुर, उत्तर प्रदेश

3. भारत में भी वर्ष 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाया गया।
4. 8 मार्च 1909 से प्रत्येक वर्ष 8 मार्च को महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है।
5. महिला सशक्तीकरण का अभिप्राय महिलाओं को पुरूषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्तता है।

or'eku e efgykvk d le{k leL;k; %

भारत ही नही बल्कि विश्व स्तर पर महिलाओं को सशक्त बनाने के लिये अनेक प्रयास किये गये। संवैधानिक कानूनी लिंगभेद निवारक व अन्य दर्जनों अधिनियम, महिला नीतियों योजनाओं व कार्यक्रमों के प्रचलन में रहने के बावजूद भी नारी को अपेक्षित लाभ नही मिले सरकारी स्तर पर भी नारी उत्थान हेतु अनेक प्रयास किये जा रहे है, फिर भी भारतीय नारी के समक्ष कई समस्यायें व चुनौती बनी हुई है। जैसे– पुरूषीय तानाशाही, अशिक्षा चक्रव्यूह, जटिल प्रशासनिक प्रक्रिया, महिलाओं का न्यूनतम राजनीतिक प्रतिनिधित्व, राजनीतिक दलों का उपेक्षापूर्ण व्यवहार, महिला सशक्तीकरण बीतते ही कार्यान्वयन वर्ष 2002 के पहले महीने में ही इन दलों ने अपना असली रंग दिखा दिया।

उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव 2002 में प्रमुख दलों ने कुल 403 सीट में से महिलाओं को 10 प्रतिशत भी नही दिये अर्थात् भाजपा ने 31 कांग्रेस ने 30 सपा ने 24 एवं बहुजन समाज पार्टी ने 16 महिलाओं को ही उम्मीदवार बनाया।[3]

Ck<rk ukjh mRihMu%&

यह विचित्र विसंगति है कि जैसे–जैसे– महिलाओं की सुरक्षा के लिये कानूनी व प्रशासनिक उपाय किये जा रहे है। वैसे–वैसे महिलाओं के प्रति अपराधों का ग्राफ निरन्तर ऊपर चढ़ रहा है। राष्ट्रीय महिला आयोग के ये आँकड़े हकीकत बयान कर रहे है।[4]

1. प्रत्येक 7 मिनट के अन्तराल पर एक महिला अपराध एवं प्रत्येक 24 मिनट बाद यौन शोषण का शिकार हो रही है।
2. 43 मिनट के अन्तराल पर एक महिला का अपहरण

3. 54 मिनट पर एक महिला के साथ छेड़छाड़ एवं महिला के साथ बलात्कार की घटना घट रही है।
4. 102 मिनट के अन्तराल में एक महिला दहेज उत्पीड़न की भेंट चढ़ जाती है।
5. स्त्री भ्रूण हत्याः– भारतीय समाज में एक घृणास्पद सत्य यह है कि लड़की को जन्म से पूर्व और विवाह के बाद मार डालने की प्रथा सदियों से चली आ रही है।
6. युनिसेफ के अनुसार, दुनियाँ में पुरूष महिला अनुपात 100:105 है जबकि भारत में यह अनुपात 100:93 तक आ गया है।

efgykvk dk lokxh.k 'kks"k.k&

नारी का शोषण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र जैसे– परिवार, उत्तराधिकारी, सम्पत्ति, वर का चयन, शासकीय सेवाएँ, खेल, शिक्षा, विज्ञापन, फिल्म आदि में असंख्य कानून होने के बावजूद जारी है।

एक कुमावनी कहावत है ''खाली छै ब्वारी बल्द पुछड़ करना'' अर्थात बहू अगर खाली ही बैठी है तो बैल की पूछ ही सहला दे। समाज ने इस कहावत के माध्यम से महिलाओं के अत्यधिक श्रम को सहज ही स्वीकारा है। आज नारी तृतीय विश्व बन गयी है। जहाँ उसे सुविधायें और मानवाधिकार बहुत कम प्राप्त है। लेकिन इनके लिये श्रम बहुत अधिक है। डॉ0 अम्बेडकर ने भी ठीक कहा है– ''भारतीय नारी श्रम से नही घबराती किन्तु आसुओं की चिन्ता करते हुये वह असमान व्यवहार, अपमान, शोषण से अवश्य घबराती है।''

efgyk l'kDrhdj.k dh vko';drk&

नारी एंव पुरूष राष्ट्र के आधार है दोनों ही विकास रूपी गाड़ी के दो पहिये है। यदि किसी एक पहिये में किसी भी प्रकार कोई अवरोध होगा तो गाड़ी का आगे बढ़ पाना असम्भव होगा। अतः आवश्यक है कि दोनों पहिये आगे बढ़ने के लिये पूरी तरह से सशक्त हो। इस सन्दर्भ में नोबेल पुरस्कार विजेता व कल्याण अर्थशास्त्र के प्रोफेसर अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक "India Economic Development & Social Opportunity" में लिखा है–

''महिला सशक्तीकरण से केवल महिलाओं के जीवन में निश्चित रूप से सकारात्मक असर पड़ेगा बल्कि पुरूषों और बच्चों को भी इससे लाभ होगा''।

ukjh dk l'kDr cuku e f'k{kk dh Hkfedk&

स्त्री शिक्षा पुरूषों की शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण व उपयोगी है। राधाकृष्णन की दृष्टि में "अपने अस्तित्व की प्रकृति के कारण स्त्रियाँ सभ्यता की दूत है।"[5] इसी आधार पर यह कहा गया है कि ''एक पुरुष की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है जबकि एक स्त्री की शिक्षा पूर्ण परिवार की शिक्षा है।'' ऐसा ही कुछ पं0 जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रकार कहा है–

''मेरी हमेशा से यह पक्की राय रही है कि पुरूषों की शिक्षा की भले ही उपेक्षा करनी करनी पड़ जाये परन्तु महिलाओं की शिक्षा की अनदेखी न तो संभव है और न ही वांछनीय। क्योंकि यदि महिला शिक्षित है तो सम्भवतः पुरूष उससे प्रभावित होगा ही और स्वाभाविक है कि उससे बच्चे विशेष रूप से प्रभावित होंगे। सभी शिक्षाविदों का मानना है कि व्यक्तित्व का निर्माण जीवन के प्रारम्भिक सात–आठ वर्षों में ही होता है।''

वास्तव में पिछले एक दशक से चल रही महिला योजनाओं, कार्यक्रमों आदि से भारतीय नारी की स्थिति में उत्तरोत्तर विकास सम्भव हुये है।

fu"d"k&

समाज में महिलाओं की स्थिति मजबूत बनाने तथा उन्हें सशक्त बनाने के लिये शिक्षा नितान्त आवश्यक है। परन्तु साथ ही साथ उनकी समस्याओं को भी दूर करना बहुत जरूरी है। महिलाओं की समस्या समाधान हेतु कुछ व्यवहारिक सुझाव इस प्रकार है–

जटिल प्रशासनिक प्रक्रिया को सरल एंव न्यूनतम कष्टदायी बनाने के लिय केवल हितग्राहियों से ही आय जाति व निवास प्रमाण पत्र माँगा जाना चाहियें क्योंकि इसमें महिलाओं को ही समय और पैसा खर्च करना पड़ता है।

डॉ0 अम्बेडकर ने भी कहा था राजनीतिक शक्ति वह मास्टर चाबी है। जिससे कई समस्याओं रूपी तालों को खोला जा सकता है। महिलाओं के लिये नेतृत्व अभाव को दूर करने हेतु महिला नेत्रियों को ही सक्रिय रहना होगा। क्योंकि पिछड़ी एंव अनुसूचित जाति व जनजाति की महिलाओं को सुविधायें दिलवाने में वहीं महिलायें परिवर्तन की भूमिका निभा सकती है। इसलिये महिला आरक्षण विधेयक में इन पिछड़ी अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिये अलग से आरक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये।

महिला योजना व कार्यक्रमों का लाभ यथासम्भव योग्य महिलायें को देने के लिये महिला अधिकारी व कर्मचारियों को नियुक्ति किया जाना चाहिये। क्योंकि इनके सम्मुख ही एक निरक्षर एवं शोषण की आशंका से भयभीत महिला अपनी समस्याओं एवं आवश्यकताओं को आसानी से रख सकती है।

पुरूष प्रधान समाज व सरकार को भी अपनी सोच बदलनी होगी कि वे अब विशेषाधिकारी नही है। महिला वर्ग को भी अपनी दशा सुधारने हेतु पुरूष वर्ग का मार्गदर्शन, स्वैच्छिक सहयोग आदि स्वीकार करना चाहिये।

. बेशक स्त्री पुरूष में मेलजोल से महिला सशक्तीकरण एवं राष्ट्रीय विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है क्योंकि स्त्री पुरूष के एकता व सहयोग से ही देश ने आजादी प्राप्त की है। डिकिन्शन महोदय ने सही कहा है।

''एकता से मानव अस्तित्व व उसका विकास सम्भव है जबकि अलग–अलग रहने से दोनों का पतन।''

नीति निर्धारण में भी महिलाओं की भागीदारी होनी चाहिये तभी वे अपने हित में व समाज के हित के लिये संबंधित कानून का सही निर्माण व क्रियान्वयन कर सकेगी।

निरक्षरता को समाप्त करके शिक्षा का प्रसार गंभीरता से करना होगा ताकि समाज में कोई भी महिला निरक्षर न रह पाये। योजना आयोग की पूर्व सदस्या मीरा सेठ के अनुसार आधी आबादी यदि अशिक्षित बनी रहे तो देश विकसित नही बन सकता है।

संक्षेप में, आज महिलायें शिक्षा प्राप्त करके दिन–प्रतिदिन नये मानदण्डों को स्थापित कर रही है।

lUnHk %

1. The complete works of S. Vivekanand, Vol-V, p-23.
2. राधाकृष्णन, अकेजनल स्पीचेज एण्ड राईटिंगस, प्रथम सीरीज, पृष्ठ–371।
3. प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर 2002, पृष्ठ संख्या–374।
4. प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर 2002, पृष्ठ संख्या–374।
5. राधाकृष्णन, अकेजनल स्पीचेज एण्ड राईटिंगस, प्रथम सीरीज , पृष्ठ–377।

****

Hkkjr dh efgykvk dk l?k"k

MkO lqeu flag*

आधुनिक संघर्षों में भारत की महिलाओं का संघर्ष 1970 से माना जाता है क्योंकि इस समय देश भर में पढ़ी–लिखी स्त्रियों के छोटे–छोटे समूह स्त्रियों के विरुद्ध होने वाले भेदभाव और राजनीति एवं समाज में उनकी नगण्य प्रतिनिधित्व के प्रति असंतुष्टि जाहिर करने लगे थे। दिल्ली, अहमदाबाद, मुम्बई, राजस्थान व अन्य राज्यों में भी स्त्री–समूह असंतुष्टि व्यक्त करने लगे थे। 1980 में 'मथुरा' आदिवासी बालिका का पुलिस द्वारा बलात्कार के विरुद्ध स्त्रियों ने सामूहिक प्रदर्शन करके विरोध जाहिर किया था। हालाँकि स्त्रियों का संघर्ष भी उतना ही पुराना है जितना कि उनका उत्पीड़न। अगर हम इतिहास में झाँककर देंखे तो अवश्य ही वहाँ उनकी उपस्थिति की झलक न देख पाएंगे क्योंकि इतिहास लेखन की प्रकिया में हाशिए पर जीने वाले तबकों को राजनीतिक कारणों से सत्ताधारी वर्ग से दूर रखा जाता है। यह एक तरह से सत्ताधारी वर्ग की राजनीति है जो शोषित वर्ग को इतिहास में जगह नहीं देना चाहता। दलित स्त्रियाँ इसका स्पष्ट उदाहरण हैं। लेकिन हमारे रिवाजों, परंपरा और घरेलू स्त्रियों द्वारा बनाये गये गीतों, महिलाओं के आपसी एकांत क्षणों में सुनाये गए अनुभवों में वे संघर्ष झलकते हैं जिन्हें शिक्षा और स्त्रियों के प्रति जागृति के अभाव में लिपिबद्ध नहीं किया गया। यहाँ तक कि इतिहास लेखन में उन जनउभारों को नहीं दर्शाया गया। जो विशेषतः अपनी अस्मिता और वजूद की लड़ाई हाशिए पर रहकर भी सड़कों पर लड़ रहे थे। दो शासकों की लड़ाई को ही इतिहास लेखन में तवज्जो मिलती आई है। इतिहास के खेल में हम स्त्रियों और दलित स्त्रियों की मुक्ति के आंदोलन के इतिहास के बारे में चर्चा करेंगे जो विविध प्रयासों से फलीभूत हुई।

भारत में स्त्री–मुक्ति आन्दोलन का आगमन कई कारणों से प्रारंभ हुआ। ब्रिटिशकालीन भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियाँ भी इस मुहिम में सक्रिय हुई। यही कारण था कि देश

* असि0प्रो0, हिन्दी विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

की आज़ादी के साथ–साथ स्त्रियाँ भी अपनी आज़ादी के बारे में महसूस करने लगी थीं। उस समय भारत में चारों तरफ अशिक्षा, अंधविश्वास, छुआछूत, भेदभाव अपनी चरमसीमा पर थे। स्त्रियों के प्रति पितृसत्तात्मक समाज का रवैया तानाशाहपूर्ण था और वे घरेलू जीवन की गुलामी में बँधी हुई थीं। ऐसी ''औरतें बचपन में ही विवाहिता और जवानी से पूर्व ही माताएँ बन जाती थीं। अधिक संतानोत्पत्ति, देखभाल और खुराक की कमी के कारण बच्चों और माताओं की मृत्युदर बढ़ती जा रही थी। पर्दा–प्रथा का पालन सख्ती से होता था। उनका भी यही विश्वास था कि वे बच्चे पैदा करने के अलावा और कुछ नहीं कर सकतीं और घरेलू काम–काज करने के लिए ही अभिशप्त हैं। महिलाओं ने अपनी पूर्ण अधीनता आत्मसात कर ली थीं क्योंकि वे आर्थिक रुप से पुरुष पर पूर्णतः आश्रित थीं और समाज में उन्हें निम्न दर्ज़ा देकर सख्त सामंती नियमों के अनुसार चारदीवारी में बंद कर रखा था।''[1] आंतरिक अंतर्विरोधों के चक्रवातों में फंसी होने के बावजूद स्त्रियाँ देशहित में कूद पड़ी थी। कुछेक सामंतवर्ग की स्त्रियाँ अपने पति की प्रेरणा पाकर आज़ादी की लड़ाई में बाहर आने लगी थी। सामंत और सम्भ्रांत वर्ग की स्त्रियों के नेतृत्व में निम्न वर्ग की स्त्रियाँ भी इनके नेतृत्व में देश की आज़ादी के लिए भारी संख्या में अपना योगदान देने लगी थी।

आज़ादी की इस रोशनी में स्त्रियों की अपनी आज़ादी का क्या महत्व था, वे धीरे–धीरे समझ रही थीं। लेकिन वर्ण व्यवस्था के चंगुल में फंसी नारी समाज ने अपनी दुर्दशा के असली दुश्मन पहचानने की कोई मुहिम नहीं चलाई। एक तरह एक धारा गाँधी के कुछेक सुधारवादी दृष्टिकोण में स्वयं को अहोभाग्य समझती थी तो दुसरी ओर वामपंथी विचारधारा के सम्पर्क में आने वाली स्त्रियाँ, वर्ग की परिभाषा में गरीबी और अमीरी के फर्क में पूँजीवादी अवधारणाएँ समझ रही थीं। इन दोनों तबकों में तीसरी धारा आम औरत, पिछड़ी, अल्पसंख्यक एवं दलित औरतों की अपनी समझदारी व नेतृत्व की अनोखी कहानी या जुबानी स्त्री–मुक्ति आंदोलन की धारा के साथ–साथ विकसित होते हुए अलग–थलग थीं। दलित स्त्रियाँ देश की आज़ादी में कदम से कदम मिलाते हुए भी अन्य स्त्रियों के बीच सामाजिक घृणा की शिकार थीं। दलित औरतों का जीवन अन्य समाज की स्त्रियों के जीवन से अलग–थलग था। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक नाकेबंदी में बंधे समाज की स्त्री सभी तरह के भेदभावों से उत्पीड़ित व प्रताड़ित थी। महाराष्ट्र

की एक उभरती दलित स्त्री राधाबाई बड़ाले ने 1945 को बंबई में आयोजित तीसरे अखिल भारतीय दलित महिला सम्मेलन में हजारों महिलाओं के सामने अपने भाषण में कहा–''हमें मंदिरों में जाने का, पनघट में पानी भरने का अधिकार मिलना चाहिए। यह हमारा सामाजिक हक़ है। शासन करने का राजनीतिक अधिकार भी हमें मिलना चाहिए। हम कठोर सज़ा की चिंता नहीं करते। हम देश की जेलों को भर देंगे। हम लाठी–गोली खायेंगे, हमें हमारा हक़ चाहिए। योद्धा कभी अपनी जान की चिंता नहीं करता। गुलामी की जिन्दगी से मृत्यु बेहतर है हम अपनी जान दे देंगे मगर अधिकार छीनकर रहेंगे''।[2] मीनम्बाल शिवराज के नेतृत्व में दलित महिलाएँ अपनी अस्मिता के लिए बड़ी–बड़ी बैठकें कर रही थीं। दलित स्त्रियों के मुद्दे थे– मंदिर प्रवेश, पीने के पानी का अधिकार, सार्वजनिक जीवन में उन्हें आने–जाने का अधिकार और सम्मान से जीने के लिए शासन करने का राजनीतिक अधिकार।

हम देखतें हैं कि देश की आज़ादी की लड़ाई के समय स्त्रियों के सामने तीन मुद्दे थे। igyk& देश की रक्षा, nwljk& जेल में गये नेताओं की रिहाई, rhljk& अकाल में भुखमरी एवं मौतों से लोगों की रक्षा। वामपंथी विचारधारा की स्त्रियाँ अपने–अपने पुरुष साथियों के साथ साम्राज्यवाद और फॉसिज्म के विरुद्ध संघर्षरत थीं तो दलित स्त्रियाँ मंदिर–प्रवेश, पीने के पानी का अधिकार, सम्मान से जीने का अधिकार और अपनी अस्मिता के लिए शासन करने के अपने राजनीतिक अधिकार के लिए अपने समुदाय के साथ संघर्षरत थीं।

lUnHkZ %

1. रेणु चक्रवर्ती; भारतीय महिला आंदोलन में कम्युनिस्टों की भूमिका, पी.पी. एच. प्रकाशन, नई दिल्ली
2. डॉ. कुसुम मेघवाल; भारतीय नारी के उद्धारक–डॉ.बी.आर. अम्बेडकर, राजस्थान दलित साहित्य अकादमी, उदयपुर, राजस्थान
3. देवलिया. डॉ0 मनोहर, 2008; स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी महिला कथालेखन : उपलब्धियाँ और सम्भावनाएँ, अमन प्रकाशन, म0प्र0

****

ikphu Hkkjrh; lkfgR; dh lkLdfrd Hkfedk e ukjh

MkO J)k JhokLro*

प्राचीन भारतीय समाज अनेक जन–समुदायों का मिश्रित रूप है। प्रत्येक समुदाय में नारी वर्ग की स्थिति के स्तर भिन्न–भिन्न थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि वैदिक आर्यों के बीच नारी की स्थिति इतनी ऊँची थी कि आज संसार का अधिक से अधिक सुसंस्कृत राष्ट्र भी नहीं कह सकता कि उसने नारी को ऊँचा स्थान प्रदान किया है। उन्हीं आर्यों के साथ ही भारत के विभिन्न भागों में कहीं दास, कहीं असुर, कहीं राक्षस, कहीं किरात और कहीं नाग जातियाँ थी। इन वर्गों में स्त्रियों का चरित्र और पद इतना ऊँचा नहीं था। जब आर्यों और आर्येतर वर्गों का एक सामाजिक संघटन हुआ और उसको हिन्दू नाम दिया गया तो उस हिन्दू समाज में आर्यों की नारी–सम्बन्धी धारणाओं के साथ आर्येतरों की धारणायें भी जोड़नी पड़ी। इन दोनों का प्रतिफल महाभारत या मनुस्मृति आदि में मिलता है। इस युग में स्त्रियाँ कहीं उच्च और कहीं हीन स्थिति में देखी जा सकती है। भारतीय साहित्य में उच्च वर्ग या अधर्म वर्ग की नारियों की चरित गाथा प्रायः मिलता है। मध्यम वर्ग की गृहिणियों का उल्लेख साहित्य में किंचित ही मिलता है। हमें प्रत्येक वर्ग की नारी का पृथक विवेचन करके परिणाम निकालने से ही नारी की वास्तविक स्थिति का परिचय प्राप्त करने की सम्भावना हो सकती है। समाज या कुटुम्ब में नारी की स्थिति का सर्वप्रथम आधार हो सकता है उनके व्यक्तित्व की ऊँचाई। वैदिक आर्यों के बीच नारियों के अध्ययन–अध्यापन की प्रथा थी। परिणामतः स्त्रियाँ विदुषी बनकर अध्यापिकायें और ऋषिकायें भी बनती थी।

''स्त्रियाँ उच्चकोटि की कवि होती थीं। परवर्ती युग में तंजौर की राज्य सभा में सैकड़ों स्त्रियाँ उच्च कोटि की लेखिकाएँ और कवियित्रियाँ थी। उनमें से मधुरवाणी का नाम सर्वोपरि है। उनका प्रादुर्भाव 17वीं शदी में हुआ।''

*35 पटेल नगर, इन्दीरा नगर, लखनऊ, उ0प्र0

साधारण स्त्रियों की निन्दा भारतीय साहित्य में असंख्य स्थानों पर मिलती है। यह निन्दा उन सती–साध्वी स्त्रियों के लिए नहीं है, जो माता, गृहिणी या भगिनी रुप में किसी परिवार को समलंकृत करती थी। इनको कुल स्त्री कहते थे, जिनके विषय में वात्स्यायन ने लिखा है–

/keeFk rFkk dke yHkUr LFkkueo pA
fu'l iRu p Hkrkj uk;% lnoRrekfJrk%A[1]

निन्दनीय वे स्त्रियाँ रही है, जो साधु पथ छोड़कर केवल शारीरिक उपभोग की सामग्री बन गयी अथवा कुचक्री लोगों का स्वार्थ साधन बनकर सज्जनों को सत्पथ से भ्रष्ट कराती चलती थी।

iDokéfeo jktUn lDlk/kkj.kk% fL=;%A
rLekRrkl u jT;r uk'olr u fo'olrAA[2]

महाभारत के विराट पर्व 8–30 के अनुसार, उन स्त्रियों की उपाधि प्राकृत है, जो सभी पुरुषों के लिए स्पृहणीय हो सकती है।

वात्स्यायन ने कहा है– समाज में चारित्रिक कमी के लिए विचित्र नारियाँ होती है, जिनके नाम है– भिक्षुकी, श्रमणा, क्षपणा, कुलटा, कुहका, झक्षणिका। भली स्त्रियों को इनसे बचना चाहिए।

fL=;k dk mnkÙk dfrRo& स्त्रियों के कृतित्व के दो पक्ष है– पौराणिक और ऐतिहासिक। पौराणिक का पक्ष लेते हुए हमें वैदिक काल से ही देव और मानव कोटि की श्रेष्ठ महिलाओं का दर्शन होता है। भारतीय धारणा के अनुसार भौतिक सुख की सर्वोच्च सीमा है प्रिय स्त्री का साहचर्य। o)kj.;d mifu"kn में प्राज्ञ आत्मा के साथ तादात्म्य होने पर कितना और किस प्रकार का सुख मिल सकता है। इसकी कल्पना कराने के लिए प्रिय स्त्री के साहचर्य सुख की उपमा दी गयी है।

जैमिनीय अश्वमेघ के अनुसार प्रमीला राष्ट्र का शासन करती थी। उसने अर्जुन से युद्ध किया। उसके पराजित होने पर अर्जुन ने उससे सन्धि की और विवाह कर लिया। सिन्धु के राजा दाहर की पत्नी का आदर्श परम उज्जवल है। अरब आक्रमणकारियों से युद्ध करते हुए दाहर मारा गया। तब रानी उनसे युद्ध करने लगी और अन्त में जौहर व्रत का पालन किया।

कल्हण ने सूर्यमती रानी के विषय में लिखा है– देश में निरुपद्रव व्यवस्था संचालन करने में उस देवी का अद्वितीय श्रेय था। वह स्वयं ही राज्य कार्योद्यत रहती थी–

Hkr Ukkjhfo/k;Ro rL;k Hkr t;LRkFkkA
fu"dydu 'khyu ukU;kU; xº;rkexkrAA[3]

कल्हण ने कर्नाटक प्रदेश की रानी रट्टा के विषय में कहा है–

rfLeu i I x jVVk[;k d.kkVh pVy{k.kkA
v;k lhé ifrHkkRok iFkJhnf{k.kkiFkeAA
foU/;kfnekxk i;kIrk fu"i;Ur iHkko;kA
nXk;o r;k n0;k drk fugrd.VdkAA[4]

उस रट्टा देवी ने राज्य करते हुए विन्ध्यपर्वत के मार्गों को दुर्गा की भाँति निष्कण्टक बना दिया। कश्मीर की प्रजा ने सुगन्धा को शासक बनाया था। कश्मीर देश की ही रड्डा देवी के विषय में कल्हण ने कहा है–

I câhfe ifr"Bkfe th.kk)kj'p ?khj;kA
r;k fp= prj;k ixfnúk foyf?krkAA[5]

कश्मीर की रानी रत्ना देवी के समान देवियों से भारत–भूमि धन्य हो गयी। कल्हण ने लिखा है–

uhRok ifr"Bk cd.BeBkfnLo fogkj HkkA
jRuk n0;k n< pØ LokFkxFku I fLFkjkAA[6]

महमूद गजनवी ने जब भारत पर आक्रमण किया था तो उससे समाज और राष्ट्र रक्षा करने के लिए अपेक्षित धन का कोष बनाने के लिए स्त्रियों ने अपने शरीर से अलंकार उतार दिये थे। अतः स्त्रियों के उदात्त पक्ष को ध्यान में रखते हुए रामायण के अरण्य काण्ड में वर्णित है।

;FkkReuLRkFkk·U;"kk nkjk j{;k foif'prkA

ukjh lEcU/kh e/;ek ifrinka प्राचीन भारत में उन मनीषियों की कमी नहीं रही, जिन्होंने स्त्रियों का समादर किया और कहा–

;= uk;Lr iT;Ur jeUr r= norkA[7]

महाभारत के अनुसार स्त्रियों को सान्त्वना दो और उनको सुरक्षित रखो। उनमें श्रद्धा न करो और गोपनीय बात न कहो। यह था स्त्रियों की प्रकृति समझ कर उनके प्रति मध्यमा प्रतिपदा का व्यवहार। विष्णु पुराण में स्त्रियों के सम्बन्ध में मध्यमा प्रतिपदा का समर्थन करते हुए कहा गया है–

;kf"krk ukoeU; r u pk lk fo'o lnc/k%A
u po";k HkoRrk l u f/kDd ;kr dnkpuAA

कल्हण ने कहा है कि यदि कथ्या की निन्दा करो तो सहजा की प्रशंसा भी करो सहजा के सम्बन्ध में कल्हण की उक्ति है कि अकेले उसी के उदात्त चरित्र से आज भी स्त्रियों का सिर ऊँचा रहना चाहिये।

सोमदेव ने स्त्रियों को गुणवती माना है और कहा है कि उनमे से कई तो भूमण्डल का अलंकार बन जाती है–

rkLr dk'pu l}'ktkrk eDrk bokxuk%A
;k% loRrkPNân;k ;kfUr Hk"k.krk HkfoAA[8]

0;kogkfjd voekuuk& सम्भवतः स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा का स्तरहीन होने के कारण उन्हे कभी–कभी अनुचित व्यवहार का पात्र होना पड़ा है। कन्या का पिता उसे वर को दान रुप में देता था। यह तो सांस्कृतिक स्तर पर उचित कहा जाता है, परन्तु राजाओं और धनिकों के इधर–उधर से प्राप्त हुई कन्याओं को धर्म–अर्जन करने के लिए दान या दक्षिणा रुप में लेने देने की व्यवस्था मानवोचित नहीं थी।

fo/kok& भारतीय समाज में विधवा प्रथा से प्राचीन काल से असीम हानि हुयी है। विधवाओं की संख्या उस स्थिति में बढ़ी, जब स्त्रियों का पति की मृत्यु के पश्चात् विवाह होना बन्द हुआ और उनका पति की चिता पर जल जाना भी सम्भव न हो सका।

lrh iFkk& वैदिक काल में विधवा पुनर्विवाह की रीति थी। फिर भी पति से भावुक स्त्रियों का प्रेम कुछ इतना गहरा होता था कि वह स्वयं सती होना स्वीकार करती थी। महाभारत में मृत पति के अनुवर्तन का महात्म्य इन शब्दों में मिलता है–

;k·fi po fo/kk ukjh Hkrkjeuorr A
fojktr fg lk f{ki dikrho fnfo fLFkrkAA[9]

कुछ स्त्रियों को उनकी इच्छा के विपरीत चिता में ढकेल दिया जाता था। सती होना कभी अनिवार्य नहीं था और यह उच्च वर्गों तक ही सीमित था।

fookg& भारतीय समाज में बहुविध वैवाहिक रीतियाँ प्रचलित थी। ब्राह्मणों स्नाताकों के लिए ब्राह्म, दैव आर्ष और प्राजापत्य विधि से कन्यायें प्राप्त हो जाती थी। बहुत से ब्राह्मणों और ऋषियों को याचना करने पर कन्यायें दान

के रुप में प्राप्त होती थी। क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र वर्ग में विवाह दो प्रकार के थे– शालीन और व्यवसायिक। शालीन विवाह में माता– पिता की अनुमति प्राप्त होने पर या इसके अभाव में कन्या और वर स्वयं निर्णय लेकर विवाह कर सकते थे। व्यावसायिक विवाह में अपनी योग्यता की उत्कृष्टता से वधू प्राप्त की जाती थी। गान्धर्व विवाह का भी प्रचलन था। चोरी करके कन्या प्राप्त करना और उनसे विवाह करना, पिशाच वर्ग के लोगों में प्रचलित था।

ifrr fL=;k dk m)kj& समाज में सदा सब तरह की स्त्रियाँ रही है और रहेंगी। उनको लौकिक और पारलौकिक जीवन के प्रति निराश करना हिन्दू धर्मशास्त्रकारों का उद्देश्य नहीं रहा। अपने पापों के लिए व्रत उपवास और प्रायश्चित आदि किये जा सकते थे। यदि स्त्री दुष्चरित्र भी हो जाय तो उसे घर से बाहर नहीं निकाला जा सकता था। उसकी शुद्धि प्रायश्चित से हो जानी चाहिए। याज्ञवल्क्य ने साधारण स्थितियों में पुश्चली स्त्रियों को अपना लेने की योजना प्रस्तुत की है। यदि स्त्री की पवित्रीकरण सम्भव न हो तब भी उसे समाज से बाहर न निकाल कर उसे अपने घर के किसी कोने में रख कर उसका भरण पोषण करते रहना चाहिए।

अस्तु उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हमारे समाज में उस समय कुछ दुर्बलतायें थी तो कुछ अच्छाईयों भी थी। जिससे हमारा प्राचीन भारतीय समाज विश्व में गौरव प्राप्त कर सका।

lUnHkZ %

1. काम सू0 4.1, 55
2. बल्लभदेव–सुभषितावली पृ. 467
3. राजतरंगिणी–7.200
4. राजत0 4, 152–3
5. राजत0 8. 3388–91
6. राजत0 8.2433
7. मनु0 3, 56
8. कथासरित्सागर– 4.1,98
9. शान्तिप0 145, 15

****

vktknh ds ckn Hkh l?k"kZjr L=h

jRus'k dqekj f=ikBh*

देश 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्र हो गया, किन्तु देश की नारी का स्वतन्त्रता संग्राम अभी जारी है। स्वतन्त्रता के बाद देश ने अनेक क्षेत्रों में तरक्की की। खूबसूरत हवाईअड्डे, मैट्रो ट्रेन, मिसाइल, परमाणु बम, मंगलयान आदि इसके प्रमुख उदाहरण है। इसके उलट एक दुनियाँ है देश के आधी आबादी की जिसका संघर्ष अभी जारी है। माना कि देश की आधी आबादी दिनों–दिन आगे बढ़ रही है, किन्तु उसकी तरक्की उस हिसाब से नहीं हुयी है, जिस हिंसा से पुरूषों की। स्त्री जाति, जिसके जन्मते ही यह प्रश्न उठता है कि उसका विवाह कैसे होगा? विवाह, क्यों होता है विवाह? क्या उसे यह अधिकार है कि उसका विवाह कब, किससे होगा? कब उसे उसकी जन्मभूमि से अलग कर दिया जाएगा? उसे खुद पता नहीं। विवाह के बाद उसे कब संतान हो? इसका उत्तर भी उसके पास नहीं है। उसके लिए क्यों जरूरी है संतान और संतानहीन स्त्री को क्यों नीची नजर से देखा जाता है? क्या यह सब संविधान द्वारा निश्चित है? क्या उसका जन्म पुरूषों की संतुष्टि और वंशबेलि बढ़ाने के लिए हुआ है? विवाह उसके अपने मन से हो, अभी यह प्रक्रिया कुछ प्रतिशत लोगों को छोड़ दे, तो स्वप्न ही है। हमारे समाज में अधिकांश स्त्रियों को यह स्वतन्त्रता नहीं है कि वह अपने वर का चयन अपनी इच्छा से कर सकें। उसकी अपनी कोई इच्छा–आकाँक्षा नहीं है? उसका अपना मन नहीं है। इन बातों पर सारा समाज चुप क्यों रहता है? क्यों नहीं इसे बदलने के लिए संग्राम करता है?

ये ऐसे प्रश्न हैं जो हमें यह सोचने पर विवश करते है कि आज के इस विकाशील दौर में भी नारी को अपने हक या अधिकार के लिए इतना संघर्ष क्यों करना पड़ रहा है? भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्री ने

*शोध छात्र, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवॉ, म0प्र0

लिखित रूप से अपना अधिकार प्राप्त कर लिया है किन्तु व्यवहार में वैसा नहीं है। जो सिद्वान्त में है उसे व्यवहार में भी होना चाहिये। इस दृष्टिकोण से स्त्रियों का संघर्ष तीव्र रूप में देखा जा सकता है। उनको अपने हक का जूनून है जिसके तहत उन्हें अपना हक चाहिये ही चाहिये। वे जानती है कि उनके अधिकारों को बड़ी चालाकी से डंडी मारी गयी है। महिलाओं के लिए संसद एवं विधानसभाओं में आरक्षण पर केवल दूषित राजनीति ही हो रही है। ''संसद और विधानसभाएँ अपने लिये मर्दानी कतारें सजाये रहती हैं, जैसे स्त्री की बड़ी उपस्थिति से वे कमजोर हो जाएँगी। जब–जब स्त्रियाँ इस मुद्दे को उठाती है, पुरूष चतुर षडंयत्रकारी के रूप में प्रकट होते हैं और औरत की बात कहते हुये जाति से जोड़कर मुद्दे को खटाई में डाल देते है'' ।[1] लगभग 15 वर्षों से संसद में यही स्थिति हैं। पुरूषों के हक के लिए किसी हद तक जाने वाली संसद महिला आरक्षण पर कोई विशेष हरकत में नहीं दिखायी देती है। इसके लिये भी स्त्री संघर्ष करती नजर आती हैं। यह कैसी स्वतन्त्रता है जहॉं कि महिला आरक्षण बिल इतने लम्बे समय से लटका पड़ा हैं। त्रिस्तरीय पंचायतों में देश की आधी आबादी को जो आरक्षण मिला हुआ है उसकी तस्वीर तो और भयावह है। पंचायती राज के तहत चुनकर आयी स्त्री अपने ही परिवार के पुरूषों–पिता, पति या पुत्र द्वारा अयोग्य मान ली जाती है और सारे अधिकार छीन लिये जाते है। अपने इस अधिकार के लिये संघर्ष करती हुयी स्त्री का चित्र अक्सर मीडिया में दिखायी पड़ता है जो यह बताता है कि उसका संघर्ष निरंतर चल रहा है।

मानवाधिकारों की श्रृंखला में सर्वप्रमुख है– जीवन एंव स्वतन्त्रता का अधिकार। इन दोनों क्षेत्रों में अभी उसे संघर्षरत ही देखा जा सकता है। जीवन रूपी मानवाधिकार का अर्थ है कि जीवन के क्रियाकलापों एवं स्वाभाविक विकास पर किसी दूसरे का हक न हो। स्वतन्त्रता से तात्पर्य उन अंकुशों से मुक्ति है जो किसी व्यक्ति के निजी विकास में बाधक हों। वास्तव में यह जीवन के अधिकार का ही विस्तार है।''[2] भारतीय संविधान में लिखा है कि व्यक्ति वहीं तक स्वतन्त्र है जहाँ तक उसकी स्वतन्त्रता से दूसरे पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, उसके हितों पर आघात न पहुँचे। स्वतन्त्रता का उद्‌देश्य सबके व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। किन्तु दुर्भाग्य यह

है कि समाज केवल अपना उल्लू सीधा करने में लगा हुआ है, उसे दूसरे की स्वतन्त्रता से विशेष मतलब नहीं है, स्त्री से तो और नहीं।

सदियों से सतायी हुयी स्त्री आज बाहर निकल रही है। स्त्री को बाहर की दुनियाँ में जाकर अपनी उपयोगिता दिखाने का मौका मिला हैं। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता की तरफ बढ़ रही है, किन्तु इस निर्भरता में वह अपनी सुध–बुध खो बैठी है, उसे आर्थिक आजादी चकाचौध कर रही है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि बाजार का नियंता भी पुरूष है और उसने बाजार की छवि में, बाजार की भाषा में तथा बाजार की चमक–दमक में औरत को घेर लिया है। बेशक पढ़ी–लिखी औरत अपनी इच्छा से जी रही है मगर अपनी आजादी के रूप में वह नये तरीके की विकट गुलामी में कैद होती चली जा रही है। लग रहा है कि औरतों के लिए अब तमाम दरवाजे खुल गये है। ऊँची–ऊँची दीवारें ढह गयी है और उसकी लगन तथा साहस ने लौह कपाटें के परखच्चे उड़ा दिये है मगर कोई बारीक साजिश इन सारे क्रान्तिकारी इरादों को पस्त कर डालती है? बारीक साजिश यानी कि पुरूष के भीतर के डर से निकली कुंठायें औरत की कमाई से डर नहीं लगता, डर उसके कैरियर से लगता है। ऐसे कितने पुरूष होंगे जो अपनी स्त्री को शिखर की ओर बढ़ते देखकर खुश होते होंगे? हाँ, खुशफहमी दिखाते जरूर है। फिर क्या आश्चर्य कि महिलायें आज भी उतनी संख्या में अधिकारिक पदों पर नहीं है, जितने कि होनी चाहिये। यह सवाल हमारे गणतन्त्र के सामने है कि नियम–निर्माण में कितनी महिलायें भाग लेती है?

स्त्रियों में अपार धैर्य होता है, इसमें कोई शक नहीं। यदि ऐसा न होता तो अभी तक जितनी भी कामयाब यात्रा संभव हुयी है, वह नहीं होती। माना कि 'मै चुप रहूँगी' की प्रतिज्ञा में बँधी नारी मुखर हुयी है और लोगों के लिय आश्चर्य का विषय बनी है, साथ ही खतरों से प्रतिदिन दो–चार हो रही है। वह जानती है कि बलात्कार, हिंसा, तेजाबी हमले, ये सब चीख–चीख कर कह रहे है कि स्त्री पुरूष व्यवस्था के लिये चुनौती बन गयी है। अब स्त्री के अधिकार की पैरवी किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है, वह अपनी सिफारिश में सबसे पहले स्वयं खड़ी होगी।

दरअसल अब स्थितियाँ बदल रही है और पहले की तुलना में महिलायें प्रतिरोध करने तथा लड़ने का साहस अधिक जुटा रही है। अब हमलों की धार दोषी की तरफ मुड़ रही है। प्रतिरोध स्वर उजागर होते जाने पर ही यह भी पता चलता जा रहा है कि कैसे तमाम संस्थानों में पितृसत्तात्मक वर्चस्व तथा वातावरण बना है और कथित तौर पर जागरूक लोगों एवं संस्थानों में भी यौन हिंसा से बचाव के उपाय तो दूर बल्कि इस मुद्दे पर सरोकार भी नहीं दिखता है। तमाम संस्थानों में यौन हिंसा नियंत्रित रखने या समाप्त करने हेतु शिकायत निवारण कमेटियों का गठन भी नहीं किया गया है।

कुछ समय पहले एक डाक्यूमेंट्री फिल्म बनी थी 'शेम इज नाट माइन' अर्थात् शर्म मुझें क्यों हो। यह फिल्म गुजरात की एक महिला सरपंच की आपबीती पर आधारित थी, जिसे बलात्कार का शिकार बनाया गया था। साक्षात्कार देते वक्त महिला ने अपना वास्तविक नाम तथा चेहरा छिपाया नहीं था। हाल में पश्चिम बंगाल के कामदुनी ग्राम की छात्रा के साथ हुये सामूहिक बालात्कार एवं हत्या की घटना को लेकर जब जनाक्रोश भड़का तब कोलकाता की सड़कों पर उतरे जुलूस में पार्क स्ट्रीट बलात्कार कांड से चर्चा में आयी पीड़िता भी शामिल हुयी थी। उसने इस रैली का संबोधित किया तथा बाद में मीडिया को साक्षात्कार भी दिया। उसने साफ कहा कि आगे से वह अपने नाम से जानी जाय न कि पार्क स्ट्रीट पीड़िता के नाम से। उस महिला ने साफ कहा कि वह क्यों शर्मिंदा हो, शर्मिंदा तो उन्हें होना चाहिये जिन्होंने उसके साथ अत्याचार किया।

स्त्री विरोधी सोच एवं मानसिकता रखने वालों को तथा अपने पद–प्रतिष्ठा एवं रसूख के नशे में मदहोश लोगों को समझना होगा कि महिलायें अब बाहर निकल चुकी है और वे वापस सिर्फ घर की चहारदीवारी के भीतर नहीं रहने वाली है। ऐसे में वे कभी हिंसा झेलकर या उसका प्रतिरोध करके या फिर चाहें जैसे हो अपने लिये जगह तो बनाएंगी। इसलिये अपराधी प्रवृत्ति के लोग या तो स्वयं को ठीक करें या ठोकर खाकर और सजा भुगतकर नियन्त्रण पाएं। इस बदलते परिदृश्य में भले किसी को महिलाओं को काम पर रखने में कितना डर लगे, किन्तु उन सभी को जवाब

तो देना पड़ेगा कि आखिर कब तक भारतीय साथ–साथ काम करना नहीं सीखेंगे।

भारतीय समाज में स्त्री जीवन के संघर्ष की कथा उसके धरती पर पैर रखने से शुरू होकर इस धरती से विदा होने तक किसी न किसी रूप में चलती रहती है। भ्रूण हत्या, स्वास्थ्य और शिक्षा में भेदभाव, दहेज समस्या, कार्यस्थल पर शोषण एवं शारीरिक उत्पीड़न ऐसी स्थितियाँ है जब पितृसत्तात्मक समाज में जी रही स्त्री की दूसरे दर्जे की स्थिति बार–बार उभर कर सामने आती है। आज मौन रहने, सिसकने वाली स्त्री इस सच को बदलने के लिये संग्राम का शंखनाद कर चुकी है।

lUnHkZ %

1. पुष्पा, मैत्रेयी, गणतन्त्र और स्त्री, दैनिक जागरण, दिनांक 20.01.2014, पृ0 16
2. शुक्ला, डॉ0 सरोज कुमार; स्त्री अस्मिता और मीडिया की भूमिका, राष्ट्रीय सहारा, दिनांक 31.01.2014, पृ0 8

****

Hkkjrh; ukjh vkj xk/kh th

Mk0 ek/kjh xIrk*

भारतीय नारी की दुर्दशा से गाँधीजी बहुत दुःखी थे। उन्हें कुछ लोगों द्वारा दी जाने वाली यह दलील कतई मान्य नहीं थीं कि भारतीय समाज में स्त्री का स्थान पुरुष से नीचा है या स्त्रियाँ बुद्धि तथा योग्यता में पुरुषों से किसी भी प्रकार कम है। वे इतिहास को साक्षी देकर कहते थे कि प्राचीन भारत में जीवन के अनेक क्षेत्रों में पुरुषों से स्त्रियाँ आगे थी। सामाजिक जीवन में उन्होंने अपने को ऊपर उठाया।[1] स्त्री मूर्तिमान आत्म–त्याग है और वह माता, पत्नी तथा बहिन के रुप में पुरुष के भाग्य का निर्माण करने में महत्ती भूमिका निभाती है। गाँधी–दर्शन में स्त्री तथा पुरुष का समान दर्जा है और एक के अस्तित्व का औचित्य दूसरे के बिना सिद्ध नहीं होता। गाँधीजी को पूर्ण विश्वास था कि स्त्री पुरुष की संगिनी है और उसी के समान मानसिक क्षमताओं से युक्त है। पुरुष की गतिविधियों में भाग लेने और उसके साथ स्वतन्त्रता तथा स्वाधीनता के अधिकारों का उपभोग स्त्री का बराबर का हक हैं। गाँधीजी ने स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार और आजादी देने का पक्ष लिया। उन्होंने नारी को चरित्र की दृष्टि से उच्च माना और उसे प्यार, मूक तपस्या, श्रद्धा और ज्ञान की मूर्ति बताया। उन्होंने कहा कि अहिंसा के नैतिकशास्त्र का प्रयोग वह पुरुष की अपेक्षा अधिक क्षमता के साथ कर सकती हैं क्योंकि उसमें प्रेम और बलिदान करने की शक्ति अधिक होती हैं। उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि नारी जो प्रेम अपने शिशु को देती है यदि वह उस प्रेम को समस्त मनुष्य जाति को दे दें। तो वह इस युद्धग्रस्त संसार को शान्ति की कला सिखा सकती है। गाँधीजी ने पर्दा प्रथा पर आघात किया। उन्होंने कहा कि पर्दे से चरित्र की पवित्रता नहीं आती अपितु चरित्र का विकास तो भीतर से होता है। गाँधीजी ने स्त्रियों से कहा कि वे यह हीन विचार त्याग दें कि वे पुरुष की कामुकता की तुष्टि के लिए

* असि0प्रो0, समाजशास्त्र विभाग, श्री शिवा महाविद्यालय, तेरही, आजमगढ़, उ0 प्र0

जन्मी हैं। उन्हें पुरुषों की दासी नहीं बने रहना है। उन्हें चाहिए कि वे चरित्र, योग्यता तथा विवेक के उच्च गुणों से अपने को आभूषित करें। गाँधीजी के शब्दों में,'' पुरुष का जन्म स्त्री से होता है, उसका माँस स्त्री के माँस से और हड्डी स्त्री की हड्डी से बनती है। स्त्रियों, अपने असली रुप में आओ और फिर अपना सन्देश दो।''[2] स्त्रियों की भूमिका को महत्त्व प्रदान करते हुए गाँधीजी ने कहा कि भारत का भविष्य उन्हीं पर निर्भर है और वे ही भावी पीढ़ियों का पालन करेगी। गाँधीजी ने स्त्रियों की सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता का ही पोषण नहीं बल्कि उनकी राजनीतिक स्वतन्त्रता की भी वकालत की। उन्होंने स्त्रियों के मताधिकार का पक्ष लिया। गाँधीजी ने भारत की एक और सामाजिक समस्या विधवा पुनर्विवाह पर भी ध्यान दिया। गाँधी– दर्शन के अनुसार, विधवा पुनर्विवाह के निषेध का बेहिचक विरोध होना चाहिए। गाँधीजी स्वीकार करते थे कि स्वेच्छा से विधवा बने रहना हिन्दू धर्म का एक महान वरदान है किन्तु जबरन वैधव्य अभिशाप है। उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि विधवाओं को बेहिचक पुनर्विवाह की अनुमति मिलनी चाहिए। जातियों तथा देश के कुछ भागों में प्रचलित इस प्रथा के वे विरोधी रहे। उन्होंने समाज–सुधारकों से अनुरोध किया कि वे अपनी पूरी शक्ति से इसका विरोध करें ।

उन्होंने बाल–विवाह में कोई खूबी नजर नहीं आई। उनके अनुसार बाल–विवाह से दम्पत्ति के स्वास्थ का ह्रास होने के अतिरिक्त बच्चे पैदा होते हैं। साथ ही कम उम्र की आयु में कमजोर बच्चा उत्पत्र होता है जो परिवार एवं समाज दोनों के लिए गंभीर समस्या है। भारत में इतनी सारी बाल–विधवाओं के अस्तित्व का एक प्रमुख कारण बाल–विवाह है। विवाह एक महान तथा पवित्र संस्कार है। इसलिए विवाह तभी होना चाहिए जब लड़का तथा लड़की दोनों इसके महत्त्व को तथा एक–दूसरे के प्रति अपने दायित्व को पूरी तरह समझ सकें।

विवाह की व्यवस्था को गाँधीजी ने एक व्यावहारिक आवश्यकता के रुप में स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि विवाह का उददेश्य भोग नहीं बल्कि प्रजनन है। यह एक पवित्र संस्कार है जिसमें आत्म अनुशासन की व्यवस्था का होना अत्यावश्यक हैं। यह एक भयानक भूल है कि पति–पत्नी

को अपनी सम्पत्ति समझे। दोनों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध प्रेम वासना से युक्त होने चाहिए। गाँधीजी ने अन्तर्जातीय और अन्तसम्प्रदाय विवाह का भी समर्थन किया। अस्पृश्यता निवारण के उददेश्य से उन्होंने हिन्दुओं को हरिजन कन्याओं के साथ शादी करने की सलाह दी। वेश्यावृत्ति को उन्होंने घोर अभिशाप माना। वास्तव में महात्मा गाँधी ने भारतीय समाज की सभी बुराइयों पर प्रहार किया और उसे उच्चतर धरातल पर लाकर खड़ा करने की चेष्टा की।

गाँधीजी ने जोरदार शब्दों में दहेज–प्रथा का विरोध किया। उनकी दृष्टि में इस सौदेबाजी से अनेक सामाजिक समस्याएँ पैदा होती हैं, विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों के लिए तो इस कुप्रथा के चलते अपनी सुंदर और गुणवान लड़कियों का विवाह एक समस्या बन जाता है। इस प्रथा के कारण अनेक लड़कियों पर विपत्तियों के पहाड़ टूटते हैं और बहुत–सी लड़कियों को आत्म–नियन्त्रण का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यह समग्र पद्धति आपसी वैमनस्य तथा समस्याएँ पैदा करती है। उनकी राय में स्त्रियों को आमतौर पर नौकरी आदि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि बच्चों के लालन–पालन तथा घर की साज–सँवार का काम ही उनके लिए बहुत है।[3]

गाँधीजी की दृढ़ धारणा थी कि मदिरापान बहुत बड़ी बुराई है। उनकी राय में नशे के लिए दवाओं का इस्तेमाल तथा मदिरापान शैतान की दो भुजाएँ हैं जिनके द्वारा वह मानव पर करारी चोट करता है। उनकी दृष्टि में शराबी और चोर एक हीं थैली के चट्टे–बट्टे हैं क्योंकि जहाँ चोर केवल धन–सम्पत्ति चुराता है, वहाँ शराबी न केवल अपनी सम्पति को, बल्कि अपनी तथा अपने पड़ौसी की, इज्जत को भी जोखिम में डालता है। उनके अनुसार पूर्ण नशाबन्दी लागू करने के लिए भारत की परिस्थितियाँ सर्वथा उपयुक्त है –यहाँ शराबखोरी का न तो फैशन है और न ही इसे सम्मानसूचक समझा जाता है। उनका कहना था कि जो राष्ट्र मदिरापान की आदत से ग्रस्त हो, उसका सर्वनाश निश्चित है। वे कहते थे कि हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि जिस व्यक्ति को नशीले पदार्थों का चस्का लग जाता है वह प्राय नैतिकता की भावना से विहीन हो जाता है। मदिरा का सेवन करना छोटी चोरियों से भी बड़ा अपराध हैं। चूँकि

मदिरापान से शरीर तथा आत्मा दोनों की क्षति होती है, इसलिए व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए ही यह सर्वाधिक हानिकारक है। गाँधीजी मदिरापान एवं नशाखोरी के न केवल विरुद्ध थे अपितु उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान शराबबंदी की मांग ब्रिटिश सरकार से की तथा इस हेतु सत्याग्रह, हड़ताल एवं आंदोलन भी किया।

गाँधीजी गौ–रक्षा के हिमायती थे, क्योंकि वे गाय को मनुष्य के बाद सम्पूर्ण प्राणी–जगत का प्रतिनिध मानते थे। उनकी राय में गौ–रक्षा का अर्थ मनुष्य, पशु तथा पक्षी की सेवा है। लेकिन यह स्पष्ट था कि गौ हत्या का पूर्ण निषेध तभी सम्भव है जब भारत में रह रहे सभी जन समुदाय इससे सहमत हों। गाँधीजी को पूर्ण विश्वास था कि भारतवासियों की बहुत –सी सामाजिक समस्याओं का समाधान उत्तम शिक्षा–पद्धति से हो सकता है,ऐसी पद्धति जो भारतीय परिस्थितियों के अनुरुप हों। उनकी दृष्टि में समाज का सुधार केवल वही पद्धति कर सकती है जो व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता, विशद् दृष्टिकोण, सरलता तथा सुलह–सफाई की भावना पर जोर दे।[4]

गाँधीजी स्वीकार करते थे कि पराधीन देश में सामाजिक सुधारों को स्थगित करना वास्तव में स्वाधीनता को स्थगित करना है। गाँधीजी ने समाज–सुधारकों को चेतावनी दी कि उनका काम कठिन और उबाने वाला है और निःस्वार्थ भावना से समाज सेवा करना आसान नहीं होता। उत्तम समाज–सेवी को बहुत शान्त तथा धैर्यवान होना चाहिए और ऐसा व्यक्ति किसी भी राष्ट्र की अमूल्य निधि है। भारत की समस्याओं के बारे में गाँधीजी के अपने विचार थे जिन्हें व्यक्त करने में वे समाज के उन गणमान्य व्यक्तियों के क्रोध से नहीं डरते थे, जिन पर उनकी आलोचनाओं का सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था। कितने ही लोगों के विक्षोभ के बावजूद वे हरिजनों के साथ रहे और सबको अहसास कराया कि जो काम हरिजन करते है तथा जो सामाजिक दायित्व वे निभाते हैं, वह समाज का कोई अन्य अंग नहीं कर सकता।

इस सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि महात्मा गाँधी सामाजिक न्याय के प्रबल पक्षधर थे और उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान देश के स्वाधीनता आंदोलन के साथ–साथ अस्पृश्यता उन्मूलन, हरिजन कल्याण एवं हिन्दू धर्म में आई विकृतियों को दूर करने के लिये भी प्रयास किये। यह महात्मा गाँधी के प्रयासों का ही परिणाम था कि कांग्रेस के कट्टर आलोचक होते हुए भी डॉ. भीमराव अम्बेडकर को संविधान की सभा का सदस्य कांग्रेस ने ही चुना,उनको संविधान की प्रारुप समिति का अध्यक्ष तथा स्वतंत्र भारत का प्रथम विधि मंत्री का महत्त्वपूर्ण दायित्त्व सौपा। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में अस्पृश्यता उन्मूलन, दलित कल्याण एवं सामाजिक न्याय की स्थापना सम्बन्धी जो भी प्रावधान किये, उन्हें गाँधीजी की सहमति प्राप्त थी। कुल मिलाकर समानता, अस्पृश्यता उन्मूलन, हरिजन कल्याण, स्त्रियों की दशा, सती प्रथा, बाल विवाह आदि विषयों पर उनके विचार प्रगतिशील है और वे एक न्यायनिष्ठ और समतामय समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

lUnHk %

1. मधुकार श्याम चतुर्वेदी, पृ. 340
2. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खंड–79, पृ. 303
3. यंग इंडिया, 10 मई, 1926
4. कलैक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, खंड, 79, पृ. 203

****

Hkkjr esa efgykvksa dk l'kfDrdj.k% ,d foospuk

MkW0 Hkkjrh ik.Ms;*

Lkkj la{ksi

वैश्विक स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था के सुदृढ़ होने के साथ महिलाओं को पुरुषों के समान लाने के प्रयत्न में तेजी आती गयी हैं। महिलाओं को अनेक क्षेत्रों में पुरुषों के समान लाया गया जैसे विधि एंव न्याय के समक्ष समानता, पारिवारिक सम्पत्ति में हिस्सेदारी, शिक्षा क्षेत्र, रहन–सहन व खान–पान, निवास, रोजगार, विचार अभिव्यक्ति, प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति, केवल पुरुष प्रधान सेवाओं जैसे– रक्षा, वाहन चालन आदि में नियुक्ति, निर्णय प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर पर समानता आदि महत्वपूर्ण क्षेत्र रहे हैं। प्रस्तुत लेख के अंतर्गत भारत में महिला सशक्तिकरण हेतु किये गये वैधानिक प्रयासों की व्याख्या की गयी है।

भारतीय संस्कृति में नारियों को सदैव सम्मानित स्थान प्रदान किया गया है। धर्म ग्रन्थों के अनुसार, जहाँ महिलाओं की पूजा होती है, वहीं देवताओं का वास होता हैं अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान होगा, वहीं सुख समृद्धि व्याप्त होगी। नारी से ही परिवार घर, समाज व राष्ट्र का निर्माण होता है क्योंकि नारी ही जननी है परन्तु घर–परिवार, समुदाय की परिसम्पत्तियों में महिलाओं की हिस्सेदारी मात्र 10–20 प्रतिशत ही है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि में महिलाओं के साथ असमान व्यवहार भारत में स्पष्ट है। लोकतांत्रिक देश और सुदृढ़ कानूनी व्यवस्था होने के उपरान्त भी महिलाएँ पुरुषों के समान अधिकार की भागी नहीं हैं। प्रायः मानवाधिकारों का हनन, आर्थिक सामाजिक व दैहिक शोषण महिलाओं के प्रति आम बात है।

---

*असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम महिला, महाविद्यालय, कानपुर, उ0प्र0

Hkkjr esa efgykvksa dk iklr vf/kdkj %

वैश्विक स्तर पर महिलाओं के अधिकारों को लेकर संघर्ष हुए। उसी प्रकार भारत में भी महिला अधिकार हेतु सुदीर्घ प्रयास किये गये जो आज भी निरंतर किये जा रहे हैं। भारत वर्ष की दीर्घ दासता के कारण सामाजिक विकास अति बाधित रहा। जिसमें महिलाएँ विशेषतौर पर दुर्बल पक्ष के रूप में स्थापित हुई। पर्दा प्रथा, सती प्रथा, सामाजिक कुरीतियाँ, रुढ़वादिता, दहेज–प्रथा, अधिकार विहीनता, पुरुष प्रधान समाज, महिला अशिक्षा आदि भारतीय समाज का अंग बना रहा। जिससे भारत में महिलाओं का शोषण उत्तरोत्तर वृद्धि करता गया।

परन्तु उन्निसवीं शताब्दी में पश्चिमी शिक्षा के आगमन, स्वतंत्रता संग्राम और राजनैतिक प्रयासों के साथ महिला अधिकारों की मांग में बल दिखाई दिया। महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा दिया जाने लगा। भारत में 1915 से 1927 के बीच अनेक महिला संगठनों की स्थापना हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त नवीन भारत सरकार द्वारा महिलाओं की दशा को सुधारने हेतु अनेक संवैधानिक व कानूनी प्रयास होने प्रारम्भ हुए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से विकास के समान अवसर प्रदान करने के लिए संविधान में कुछ विशेष व्यवस्थाएँ की गयी। इसके साथ ही महिलाओं से संबंधित प्रमुख अधिनियम पारित किये गये हैं।

महिला कल्याण एवं महिलाओं के चतुर्मुखी विकास हेतु भारत सरकार द्वारा निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। आज विभिन्न विकास कार्यक्रम एवं कल्याणकारी योजनाएं महिलाओं के लिए चलाये जा रहे हैं। jk"Vªh; efgyk vk;ksx % राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना 31 जनवरी, 1952 को राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 के द्वारा की गई। आयोग के प्रमुख कार्य निम्नवत् है–

1. महिलाओं के लिए संविधान और अन्य विधियों के अधीन सभी विषयों का अन्वेषण और परीक्षा करना।
2. अन्वेषण और परीक्षा की रिपोर्ट प्रतिवर्ष सरकार को देना।
3. रिपोर्टो में महिलाओं की दशा सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य सरकार द्वारा उठाये गये रक्षोपायों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिश करना।

4. संविधान और अन्य विधियों के उपबन्धों के महिलाओं से सम्बन्धित अतिक्रमण के मामलों को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठाना।
5. महिलाओं के विरुद्ध विभेद और अत्याचारों से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करना।
6. महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना।
7. जेल, सुधार गृह, महिला संस्था या अभिरक्षा के अन्य स्थान पर जहाँ महिलाओं को बंदी के रुप में रखा जाता है, का निरीक्षण करना या करवाना और आवश्यक कार्यवाही करवाना।
8. कोई अन्य विषय जिसे केन्द्रीय सरकार निर्दिष्ट करें।

राष्ट्रीय महिला आयोग के अतिरिक्त कई राज्यों में भी महिला आयोग का गठन हो चुका है। इसके अलावा सरकार द्वारा महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु राष्ट्रीय नीति के रुप में ''महिला सशक्तिकरण नीति 2009'' बनायी गयी है जो महिलाओं के उत्थान व विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में महिलाओं को अनेक संवैधानिक अधिकार प्राप्त है। परन्तु परिस्थितियों में हम यह पाते हैं की भारत में महिलाओं पर शोषण एवं अत्याचार जारी हैं। महिलाएँ स्वजनों द्वारा भी पीड़ित व शोषित की जा रही है। राजनीतिक आँकड़े भी महिला सदस्यों की संख्या के प्रति उदासीनता प्रदर्शित करते दिखाई देते हैं। समान अधिकार प्राप्त होने के बाद भी महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में शोचनीय हैं। 21वीं सदी महिलाओं की मानी जा रही हैं। इस सदी की महिला जागरुक होकर यह संकल्प लें कि वह किसी भी महिला के साथ अन्याय व अत्याचार न करेगी न करने देगी। आज समाज को अनेक इंदिरा गाँधी, मदर टेरेसा, किरण बेदी, कल्पना चावला, सानिया मिर्जा, सायना नेहवाल, चन्दा कोचर, इन्दिरा नूयी जैसी हजारों महिलाओं की आवश्यकता है, जिसमे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का विकास संभव हो सके। यदि परिस्थितियाँ महिलाओं के विकास में बाधक बने तो उन्हें अपने साहस व दृढ़ इरादों से तोड़ने का संकल्प लेना होगा। असमानता व अनाचार के विरुद्ध एकजुट हो कर, दृढ निश्चयी बनकर, विकास के पथ पर अग्रसर होना होगा। महिला

अस्तित्व को नयी परिभाषा प्रदान करनी होगी। उत्तमता और गुणवत्ता की सतत् सक्रिय संकल्पना ही महिला अस्तित्व को श्रेष्ठतम् बना सकती है। इसके लिए महिलाओं के साथ सामाजिक संगठन, सरकार, मीडिया, स्वयं सेवी संगठन, मानवाधिकार आयोग व महिला आयोग की सकारात्मक भूमिका निर्वहन की आवश्यकता हैं।

lanHkZ %

1. भारत में महिलाएँ; सांख्यिकी प्रोफाइल (महिला सशक्तिकरण के उपाय) राष्ट्रीय जन सहयोग व बाल विकास संस्थान, नई दिल्ली, पृ. 10–14
2. योजना आयोग, पंचवर्षीय योजना, नई दिल्ली, 2009
3. योजना, अक्टूबर 2008; योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली, पृ 21–22
4. शर्मा, संगीता. 2010; महिला विकास एवं राजकीय योजनाएँ, रितु पब्लीकेशन्स, जयपुर
5. 'बोस आशीष. 2001; पॉपूलेशन्स इन इण्डिया', बी.आर. पब्लीकेशन्स, नई दिल्ली
6. सारस्वत स्वप्निल. 2005; 'महिला विकास', नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 44–42
7. डॉ. एस. राम. 2004; वूमन एण्ड सोशल चेन्ज, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली
8. भारतीय समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति, अलॉइड पब्लिशर्स प्रा0 लि0, पृ0 43

****

fir'lÙkkRed lekt e ukjh % euLefr d fo'k"k lUnHk e

MkO vk'krk"k JhokLro*

सृष्टि के प्रारंभ काल से ही पितृसत्ता द्वारा निर्मित मानदण्ड समाज में व्याप्त है। परन्तु उत्थान और पतन के साथ स्त्रियों के महत्व में कमी नहीं आयी। वैदिक काल को स्त्रियों की अस्मिता (अस्तित्व) का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। स्मृति काल में उनके शिक्षा स्वतन्त्रता में थोड़ा पतन अवश्य हुआ, परन्तु अपने त्याग और तपस्या के कारण वह सदैव समृद्धि की प्रतीक मानी गयी। आचार्य मनु ने तो यहाँ तक कह डाला कि जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती है वहीं देवता लोग आनन्दित रहते है, और जहाँ इनका अपमान होता है वहाँ सब कार्य निष्फल होते हैं।[1] जिस कुल में स्त्रियाँ शोक करती है वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। कुल की उन्नति का कारण स्त्रियाँ होती है।[2] इसलिए वैभव की इच्छा रखने वाले मनुष्य उत्सव आदि के अवसर पर भोजन, वस्त्र, अलंकार आदि से उनका सम्मान करते हैं।[3] इन्होंने नारी के कन्यापन, मातृत्व तथा गृहिणीत्व की पूजा की है।

वैदिक काल से ही यज्ञ और मोक्ष की दृष्टि से समाज में पुत्र अधिक प्रिय होता था, तथापि कन्या की भी कामना की जाती थी। पुत्र के समान पुत्री भी स्त्री पुरूष के अंग–अंग से उत्पन्न हुई है। अतः वह भी पुत्रवत् है। आचार्य मनु ने जैसा पुत्र वैसी ही पुत्री[4] कहकर उक्त कथन को और अधिक पुष्ट किया है। उनके विचार में कन्या परम स्नेह एवं कृपा की पात्री है यदि वह कुछ बुरा भी कहे तो उसे सह लें।[5] नारी का भौतिक दैविक एवं आध्यात्मिक उन्नति पुरूष की जीवन संगिनी बनकर तथा पतिव्रत धर्म के पालन से ही सम्भव है। क्योंकि भारतीय नारी का अधिकाँश समय पति के साथ ही व्यतित होता है। हिन्दू धर्म का कोई भी धार्मिक कार्य नारी के अभाव

*35 पटेल नगर, इन्दीरा नगर, लखनऊ, उ0प्र0

में अपूर्ण माना जाता है। नारी को शक्ति, ज्ञान और सम्पत्ति का प्रतीक मानकर महाकाली, महासरस्वती, महालक्ष्मी के रूप में आज भी नवरात्र में पूजा जाता है। धर्मशास्त्रियों ने नारी के संरक्षण का भार बल के प्रतीक पुरूष के उपर छोड़ दिया। आचार्य मनु ने स्त्री को बचपन में पिता युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन बताया है। वह स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं है।[6] इस मंत्र का तात्पर्य यह नहीं है कि आचार्य मनु के लिए स्त्री का महत्व कम है। वर्तमान समय में नारी के उत्थान के लिए इस मंत्र का भाव समझना अति आवश्यक है। उन्होंने अपवित्र वासना से रक्षा के लिए उसकी स्वतंत्रा को नियन्त्रित किया, क्योंकि अनियंत्रित स्त्रियाँ पिता तथा पति दोनों के कुलों को नष्ट कर देती है।[7] कामवासना मंद या नष्ट करने के प्रयोजन से उसकी निन्दा की। मंत्र से स्पष्ट होता है कि नारी के गौरव के लिए ही आचार्य मनु ने इसकी निन्दा की। नारी कामवासना की तृप्ति के लिए नहीं है, बल्कि वह लक्ष्मी, सखा तथा धर्म एवं अर्थ में सहायक है। कामवासना सन्तान उत्पति के लिए ही विहित मानी गयी है। शास्त्रानुकूल उत्पन्न सन्तान श्रेष्ठ होता हैं।[8]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पितृसत्तात्मक समाज स्त्रियों की अवहेलना या परतन्त्रता के लिए नहीं हैं। स्त्री स्वयं एक आत्मा हैं पुरूष की भाँति उसका भी गृहस्थाश्रम उसके अपने आत्मा की उन्नति तथा सद्गुणों के विकास के लिए साधन स्वरूप है। जिसमें वह मातृत्व, गृहिणीत्व आदि कर्त्तव्यों का पालन करती हुई तथा पति के सत्कार्यों में सहायता देती हुई उनके साथ–साथ परोपकार, सेवा, संयम, त्याग, समत्व, ज्ञानप्राप्ति, भक्ति आदि का अभ्यास करती हुई अपने आत्मिक सद्गुणों का विकास करती है। मनु ने माता को शिक्षक से दस लाख गुना तथा पिता से हजार गुना गौरवशाली बताया है,[9] नारी जननी के स्तर पर स्वर्ग से भी अधिक गौरवशाली, महिमाशाली है। स्त्रियाँ ही राष्ट्र निर्माण की नींव हैं। बच्चों को अपने अमृतमयी दूध का पान कराके, उत्तम लोरियाँ, शिक्षा, ज्ञान के बातें कहानियाँ आदि सुनाकर जैसे चाहे वैसे ईश्वर भक्त, विद्वान, वीर, सन्तति का निर्माण कर सकती हैं। हृदय पक्ष की प्रधानता के कारण नारी जीवन के जटिल से जटिल पक्षों पर भावनाओं के आधार पर निर्णय लेने में सक्षम होती है। समाज भले ही

पितृसत्तात्मक हो, परन्तु संसार में सबसे दुष्कर भार स्त्री के कंधे पर हैं। मातृत्व का पद गृहण करना संसार का सारा दायित्व लेने के समान हैं।

वर्तमान समय में मानव हित के लिए नारी को पाश्चात्य शिक्षा में रंगे होने के बावजूद भी उसे अपने संस्कार और विचारों में परिवर्तन की आवश्यकता हैं, अपने अन्दर दया, शील, परोपकार, सहानुभूति जैसे गुणों को विकसित करना होगा, अपने पूर्ववर्ती विदुषी, धर्मशीला और राष्ट्रभक्त स्त्री रत्नों का अनुकरण करना होगा। ऐसी शिक्षा पद्धति का अनुसरण करना चाहिए, जिससे नारी को अपने स्वरूप तथा कर्त्तव्य का यथार्थ ज्ञान हो सके, तभी छोटी–छोटी बच्चियों से लेकर वृद्धावस्था को प्राप्त महिलाओं का अपहरण और बलात्कार से समाज मुक्त होगा तथा एक स्वस्थ एवं खुशहाल समाज की संरचना होगी।

lUnHk %

1. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
   यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः। मनु 03/56
2. भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिताः।
   प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः। मनु 09/5
3. तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
   भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च। मनु 03 /59
4. यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। मनु 09/130
5. छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम्।
   तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासंज्वरः सदा। मनु 04/185
6. पिता रक्षित कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
   रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। मनु 09/3
7. शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कूलम्।
   न शोचन्ति तु यत्रैता बर्धते तद्धि सर्वदा। मनु 03 /57
8. यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
   तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः। मनु0 09/09
9. उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
   सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।। मनु0 /145

****

efgykvksa dh fLFkfr ,oa vf/kdkj % ,d uohu fo'y"k.k

Mk0 egUnz dqekj mej*

महिलाएँ प्रत्येक समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिनकी संख्या लगभग पुरूषों के समान है। जहाँ तक भारतीय समाज का प्रश्न है, स्त्रियों की स्थिति काफी उच्च रही है, विशेषतया हिन्दू समाज में पुरूषों के अभाव में स्त्री को स्त्री के अभाव में पुरूष को अपूर्ण माना गया है। इसी कारण हिन्दू समाज में स्त्री को पुरूष को अर्धांगिनी माना गया है। धीर–धीरे स्मृतिकाल, धर्मशास्त्र काल तथा मध्यकाल में इनके अधिकार छीनते गये और पुरूषों की तुलना में इनकी स्थिति में गिरावट आई। इन्हें परतन्त्र निःस्सहाय और निर्बल मान लिया गया। ब्रिटिश शासनकाल में देश में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में जागृति आने लगी। समाज सुधारकों एवं नेताओं का ध्यान स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की ओर गया। पिछले कुछ वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ। आज महिलाएँ हमारी राष्ट्रीयता का प्रतीक भी है। अपने देश को हम 'भारत माता' कहकर हम उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते है और हमारे समाज में मातृत्व का आदर भी है।

महिलाएँ और बच्चे किसी भी समाज की नाजुक कड़ी होती है। परन्तु आजादी के बाद भी इनके शोषण की समस्या एक बड़ी चुनौती है इनको शोषण से बचाने एवं गरिमामयी जीवन जीने के लिए कई उपाय किये गये है लेकिन फिर भी इनका शोषण आज भी जारी है। विधानसभा में 33 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित है लेकिन इनके साथ भ्रूण हत्या, बाल विवाह, बलात्कार, घरेलू हिंसा जैसी समस्याऐं देश में व्याप्त है। महिलाओं को भारतीय समाज में यौन इच्छाओं की पूर्ति एवं बच्चों का पालन पोषण करने वाली एक सेविका के रूप में अधिक जाना जाता है। हमारा

*असि0 प्रो0, दूधनाथ सिंह स्मारक महाविद्यालय, मडियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

देश पुरूष प्रधान देश है यहाँ पुरूषों को अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त है। जिसके कारण यहाँ महिलाएँ पुरूषों के अधीन है। आज भी महिलाओं के साक्षरता दर पुरूषों की तुलना में कम है।

उपरोक्त बातों से स्पष्ट होता है कि जब हम महिलाओं तथा पुरूषों की वास्तविक योग्यता एवं क्षमता पर ध्यान दिये बिना समाज में मात्र लिंग के आधार पर महिलाओं को पुरूषों के अधीन मानकर हम उनकी स्थिति का असमान रूप से निर्धारण करते है तो ऐसी दशा को लैंगिक विषमता के नाम से जानते है। भारत की जनगणना के अनुसार भारत में स्त्री–पुरूष का अनुपात 943 महिलाएँ प्रति हजार पुरूष है। राज्यों में प्रति हजार पुरूषों में महिलाओं की संख्या सर्वाधिक केरल में 1084 महिलाएँ प्रति हजार पुरूष तथा कम सबसे हरियाणा में 877 महिला प्रति हजार पुरूष रही।

आज सर्वप्रथम महिलाओं को अपनी चेतना को परिवर्तीत करना चाहिए। अपने बारे में महिलाओं का जो विचार है उन्हें बदलना होगा और अपने स्वयं को आत्मविश्वास में वृद्धि करनी होगी। उन्हें अपनी ताकत एवं सामर्थ्य को समझना चाहिए और अपनी सोच एवं व्यवहार में परिवर्तन करके ही वे अपने आपको आत्मनिर्भर बना सकती है। घर परिवार और समाज को पोषित करने में उनके योगदान को समझा व सराहा जाय इसके लिए उन्हें स्वयं प्रयास करना चाहिए। उनको अपने मौलिक अधिकारों को भी समझना चाहिए जो उनके मानवाधिकार भी है।

महिला मुक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ इग्लैण्ड में स्टुअर्ट मिल के द्वारा महिलाओं के मताधिकारों की माँग को लेकर लगभग 1823 में चलाया गया। यह आन्दोलन 1960 के लगभग कई देशों में एक क्रान्तिकारी रूप में परिवर्तीत हो गया। 1928 तक महिलाओं को मत देने व सरकार की सदस्य बनने का भी अधिकार प्राप्त हो गये थे। महिलाओं की उच्च पदों पर नियुक्ति अभी एक तिहाई की संख्या में है। देश में महिला आन्दोलन ने 1970 के दशक के अन्त में काफी जोर पकड़ लिया। मथुरा में बलात्कार का मामला राष्ट्रीय स्तर का सबसे पहला था। जिसने महिला समूहों को एकजुट किया उसके बाद ये कन्या भ्रूण हत्या, लिंग भेद एवं महिला साक्षरता जैसे मुद्दों पर एक हो गयी। भारत में महिला उद्यमिता का रूझान और राष्ट्रीय आय

में उनका योगदान बढ़ता जा रहा है। अनुमानतः भारत में महिला उद्यमों का हिंसा कुल उद्यमों का दस प्रतिशत है, और इसमें प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है, अगले पाँच वर्षों के अन्दर यह 20 प्रतिशत तक बढ़ सकता है।

सरकार ने महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हिंस्सेदारी को बढ़ाने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाऐ है जिनमें से कुछ इस प्रकार है–

1. ग्रामीण महिलाओं के कल्याण के लिए गाँवों में महिला मंण्डल बनाये गये।
2. 1975 में पूरे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया गया। भारत भी इस वर्ष महिलाओं के लिए अनेक सामाजिक आर्थिक कल्याण के कदम उठाऐ।
3. 8 मार्च 1992 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया।
4. 1986–87 में उत्तम रोजगार सेवा उपलब्ध कराने की दृष्टि से महिला विकास निगम स्थापित किया गया।
5. शहरी और स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण की व्यवस्था की गयी।
6. सन् 2001 में नारी सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय नीति की घोषणा की गयी।
7. सन् 2005 में महिला उत्पीड़न रोकने के लिए घरेलू हिंसा अधिनियम बनाया गया।
8. सन् 2010 में कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से महिलाओं का संरक्षण विधेयक लोक सभा में पेश किया गया। इसमें कार्य स्थलों में महिलाओं को यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान किया गया है।

भारतीय महिलाओं की ये सब उपलब्धियाँ सच है पर उतना ही सच है उनकी स्थिति का अन्धकारमय पक्ष। हमें इस सत्य को नही भूलना चाहिए की ये उपलब्धियाँ शहरी महिलाओं तक सीमित है और शहरों में कुल भारतीय जनसंख्या का केवल एक चौथाई भाग ही निवास करता है, शेष जनसंख्या गाँवों में रहती है। आज आजादी के लगभग 7

दशक बाद भी लाखों करोड़ों महिलाएँ किसी न किसी रूप में उत्पीड़न, अन्याय व हिंसा की शिकार है। भारतीय समाज में स्त्रियों की उच्च स्थिति का वर्णन करते समय इस वास्तविकता को भी नही भूलना चाहिए। भारतीय राजनीति के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है कि राष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष, पार्टी अध्यक्ष और लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष पद पर महिलाएँ आसीन है। सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के बढ़ते प्रतिनिधित्व के लिए यह शुभ संकेत है।

lUnHkZ %

1. गुप्ता, एम. एल., शर्मा, डी.डी. 2011; समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
2. श्रीवास्तव, सुधा रानी और आशा 2006; महिला शोषण एवं मानवाधिकार, नई दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
3. द्विवेदी, पूनम. 2007; महिला सशक्तिकारण में शिक्षा का महत्व।
4. शास्त्री, राजाराम. 1970; समाज कार्य, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश।
5. मुखर्जी, रविन्द्रनाथ. 2011; समाजशास्त्र, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन, आगरा।
6. सिंह, वर्मा, जगमोहन. 1997; भारतीय समाज में नारी अस्मिता, 'मानव' वर्ष 25 (1) जनवरी–मार्च।
7. श्रीवास्तव, रमेश चन्द्र. 2001; महिलाओं की स्थिति और विकास, समाज कल्याण, वर्ष 46 (7) फरवरी।

****

efgyk l'kfDrdj.k % miyfC/k;k ,oa pqukSfr;k

Mk- vHk; iratki flag*

मनुस्मृति का यह श्लोक –'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमंते तत्र देवता' इस बात को स्पष्ट करता है कि प्राचीन काल में भारतीय महिलाओं की स्थिति काफी उच्च थी अर्थात् प्राचीन काल भारतीय महिलाओं का स्वर्णिम काल था। पुरूष प्रधान समाज के बावजूद भी महिलाओं का समाज में सम्मान एवं प्रतिष्ठा थी और उन्हें आगे बढ़ने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। अपने आध्यात्मिक ज्ञान और अगाध प्रतिभा से वे समाज को यह बताने में सक्षम हुई कि वे पुरूषों से किसी भी स्तर पर कम नहीं है इन विदुषी महिलाओं में गार्गी, मैत्रेय आदि प्रमुख है। परन्तु मध्य काल में इनकी स्थिति सुखद नही थी, उनकी प्रगति अवरूद्ध हो रही थी। ब्रिटिश काल की सामाजिक, राजनीतिक चेतना का प्रभाव महिलाओं पर पड़ा लेकिन कोई खास प्रगति नही हुई क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने महिलाओं की तरफ कोई विशेष ध्यान नही दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न दलों की सरकारें महिला संगठनों महिला आयोगों आदि के प्रयासों से महिलाओं के लिए विकास के द्वार खुल गये उनमें शिक्षा का प्रसार हुआ जिससे उनके आत्मविश्वास में वृद्धि हुई। आज वे राजनीति, समाज सुधार, शिक्षा, पत्रकारिता, साहित्य, उद्योग, विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है। एक तरफ यह परिदृश्य उत्साहजनक है, परन्तु दुसरी तरफ आज भी लाखों करोड़ों महिलाएँ गरीबी, शोषण एवं उत्पीड़न की शिकार है। देश में लाखों परिवार गरीबी में जी रहे है और गरीबी का सर्वाधिक प्रभाव इन परिवारों की महिलाओं पर पड़ रहा है। यही नहीं घर से बाहर काम करने वाली महिलाओं का शोषण आज भी हो रहा है। वे पुरूषों के समान कार्य करने के बावजूद भी उनके बराबर मजदूरी नही पाती है।

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, आर.एस.के.डी.पीजी.कालेज जौनपुर(उ0प्र0)

यह सर्वविदित तथ्य है कि सबसे पहले स्त्री ने ही पुरूष को घर बनाकर रहने की प्रेरणा दी लेकिन आज उसी घर में स्त्री को शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक आदि विभिन्न रूपों में घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ रहा है। जिसके कारण स्त्री का अस्तित्व परिवार में ही नही अपितु परिवार के बाहर भी कमजोर हुआ है। यही नही घरेलू हिंसा महिला के साथ–साथ उसके बच्चों पर भी गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती है। जिसके परिणामस्वरूप बच्चे असामाजिकता की तरफ उन्मुख हो जाते है क्योंकि पारिवारिक परिवेश अपना प्रभाव छोड़ता है।

एमनेस्टी इण्टरनेशनल द्वारा हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार भारत में 40 प्रतिशत विवाहित महिलाओं को सिर्फ इस कारण प्रताड़ित किया जाता है कि उनका बनाया भोजन या सफाई पसन्द नही आयी। इन बातों का प्रभाव उनके मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिसके कारण वे कई बार खुद ही हिंसा का समर्थन करने लगती है। समाज में आज भीं सर्वाधिक उत्पीड़न विधवाओं का हो रहा है युवा विधवाओं को तो अनेक प्रतिबन्धों में जीना पड़ता है, यहाँ तक कि यदि वे कामकाजी महिलाएँ है तो उसके चरित्र पर कीचड़ उछालने और ताने देने में लोगों को जरा भी संकोच नही होता। विधवा महिलाओं में बेसहारा महिलाओं को यदि जीविकोपार्जन का साधन नही मिलता तो कई बार वे अनैतिक कार्य करने पर विवश हो जाती है और जो ऐसा नही कर पाती वे परेशान होकर प्रायः आत्महत्या कर लेती है। महिलाओं से छेड़छाड़ और कार्यालयों में कार्यरत महिलाओं के अलावा अन्य महिलाओं के यौन उत्पीड़न की घटनाएँ लगातार हो रही है। उच्चतम न्यायालय ने यौन उत्पीड़न को गम्भीरता से लेते हुए कुछ समय पहले सरकार को निर्देश दिया था कि वह सरकारी व निजी क्षेत्र में महिला यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए उचित कानून बनायें।

सरकार ने महिलाओं का यौन उत्पीड़न रोकने सम्बन्धी कानून बनाने के अतिरिक्त महिला सशक्तिकरण आन्दोलन को सुदृढ़ करने के लिए संवैधानिक सुरक्षा के साथ–साथ एक कारगर संस्थागत ढ़ाँचा भी खड़ा किया है। महिलाओं और बच्चों के विकास को आवश्यक गति प्रदान करने के लिए सन् 1985 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत महिला एवं बाल

विकास विभाग का गठन किया गया। यह विभाग नोडल संगठन के रूप में अपनी भूमिका के अन्तर्गत योजनाएँ, नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार कर रहे सरकारी संगठनों के प्रयासों में समन्वय स्थापित करता है। सन् 1992 ई0 में स्थापित राष्ट्रीय महिला आयोग के कार्य एवं जिम्मेदारीयाँ काफी बड़ी है। महिलाओं के रक्षा से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं और सशक्तिकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए सभी प्रयासों के इसके दायरे में लाया गया है। देश में समाज कल्याण सम्बन्धी गतिविधियों को बढ़ावा देने तथा महिलाओं, बच्चों, और विकलांगों के कल्याण कार्यक्रमों को स्वयं सेवी संगठनों के माध्यम से लागू करने के लिए सन् 1953 में केन्द्रीय समाज कल्याण का गठन किया गया। यह आजाद भारत का पहला संगठन है जो महिलाओं और बच्चों के विकास कार्यक्रमों को लागू करने में जन सहयोग प्राप्त करने के गैर सरकारी संगठनों की मदद ले रहा है।

वर्तमान समय में यह जरूरी है, तभी सशक्तिकरण वास्तविक अर्थों में दिखेगा। आरक्षण से ज्यादा जरूरी यह है कि स्त्री अपने गढ़े हुए बनावटी व्यक्तित्व से अपने को मुक्त करें। महिला सशक्तिकरण अभियान को वास्तविक सार्थकता तभी मिल सकती है।

lUnHkZ %

1. Kaushik, Vijay (1997); Women's Movement and Human Rights, Jaipur, Pointer Publishers
2. Majumdar, Maya (2004); Social Status of Women in India, New Delhi, Dominant Publishers & Distributors
3. Shams, Shamusuddin(1998) ;Women Law and Social Change, New Delhi, Ashish Publishing House
4. Mishra ,R.P. (1985); Development Issues of our time, New Delhi, Concept Publishing Company.
5. Ahuja, Ram (1992); Rights of Women: A Feminist Perspective, Jaipur, Rawat Publication
6. Srinivas, M.N. (1978); The Changing Position Indian Women, Delhi, Oxford University Press.

****

Hkkjrh; ukjh dh n’kk ,o fn’kk e ifjoru

MkO lUrk"k dekj f=ikBh*

किसी भी सभ्य समाज की स्थिति उस समाज में नारी की दशा को देखकर ज्ञात की जा सकती है। मानव जीवन में नारी विधाता के द्वारा कृत सर्वोत्तम कृति है। स्त्री सृष्टि के विकास क्रम में एक महत्वपूर्ण घटक है। उपनिषद मानते हैं कि संसार की सम्पूर्ण रिक्तता की पूर्ति स्त्री द्वारा ही होती है।

v;ekdk"k% fL=;k i;r ¼ognk.;dkifu’kn 1-4-3½

ऋग्वैदिक समाज में नारी का उच्च स्थान था इसलिए ऋग्वेद का कथन है कि स्त्री ही ब्रह्मा है?

L=h fg cge DHkfoFk ¼_Xon 2-4-1-17½

परन्तु उत्तर वैदिक काल में नारी की स्थिति में वह उच्चता नहीं दिखने को मिलती है, जो वैदिक युग में थी। वैदिक युग में नारी को गौरवशाली व्यक्तित्व प्रदान किया गया। वैदिक काल नारी का अति अभिनन्दनीय एवं उज्जवल रूप प्रस्तुत करता है। इस काल की विदुषी स्त्रियों में अपाला, लोपामुद्रा तथा विश्ववार आदि नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जैसा कि अर्थवेद कहता है।

fujkfM; litk vRe t/khr% ¼vFkon 14-2-74½

वेदों में नारी को अर्धांगिनी माना गया है। भारतीय संस्कृति में पत्नी, पति की सहधर्मिणी, सहचारी एवं जीवनसंगिनी मानी जाती थी। कोई भी शुभ कार्य व अनुष्ठान नारी के बिना पूर्ण नहीं होता था। पति द्वारा कराया गया यज्ञ तभी पूर्ण माना जाता था जब पत्नी उस यज्ञ में उपस्थित हो। इसलिए रामचन्द्र जी को अश्वमेध में सीता जी की सोने की मूर्ति बनवाकर अपने पास रखवानी पड़ी थी। इसलिए कहा है

^^v;fK;k ok ,o ;k·iRuhd%^^ ¼’kriFk½

*पी0डी0एफ0, समाजशास्त्र विभाग, बी0एच0यू0, वाराणसी, उ0प्र0

वैदिक युग में नववधू को घर की सम्राज्ञी माना जाता था। ऋग्वेद में पत्नी को ही घर कहा गया है।

^^tk;nLr e/kouRlnsu ;kfuL=kfnRok ;Drk gj;k o/Ur^^

भारतीय प्राचीन संस्कृति में परमात्मा को सर्वस्व स्वीकार करते हुए भी उसकी अराधना सर्वप्रथम माता के रूप में की गई है।

Roeso ekrk p firk Roeso] Roeso cU/k'p l[kk RoesoA
Roeso fo|k nzfo.ka Roeso] Roeso lo ee nso&nsoAA

महाभारत के अनुशासन पर्व में भी माता की श्रेष्ठता का वर्जन है जिसमें कहा गया है माता जननी है। माता में ईश्वर को देखो। उसकी वन्दना करो, माता के लिए कहा गया–

^ukfLr ekr`leks x#:^ ¼10-5-15½

महर्षि मनु के अनुसार

fL=;k% ;K p iT;Urs jeUrs r t norkA
vifrrk"p ; tLrk% lokLr tkQyk% fØ;k%AA

(मनुस्मृति : 3/56)

वैदिक युग में नारी की शिक्षा पर भी पुरूषों के समान ही थी। नारियों को स्वयं वर चुनने का अधिकार था अर्थात् स्वयंवर प्रथा, नियोग तथा विधवा विवाह प्रचलित था। परिवार में गृह पत्नी का विशिष्ट महत्व एवं आदर था। गृह पत्नी पर घरेलू कार्यों का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व होता है। (मजूमदार) वैदिक काल में स्त्रियों में पर्दे की प्रथा नहीं थी तथा उन्हें घूमने, यज्ञ, त्यौहार व उत्सवों में भाग लेने की स्वतन्त्रता थी। वैदिक युग भारतीय नारी का स्वर्णिम युग माना जाता है। वैदिक युग की नारियाँ अपने निर्णय लेने में स्वतंत्र थीं। उन्हें पुरूषों के समान अधिकार थे।

बौद्ध काल में स्त्रियों की स्थिति में वैदिक युग की अपेक्षा अधिक पतन हो चुका था। समाज में उनकी स्थिति इतनी उपेक्षित थी कि स्वयं गौतम बुद्ध अपने संघ में नारियों के प्रवेश करने के विषय में परांगमुख थे।

मौर्यकाल में अनेक ऐसी नारियों का उल्लेख मिलता है जो पारिवारिक जीवन व्यतीत नहीं करती थीं और राजनीति में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। गणिकाओं से गुप्तचरों का भी कार्य लिया जाता था। राजमहल में महिलाएँ सैनिकों के रूप में कार्य करती थीं। गणिकाएँ राजा की अंगरक्षिकाओं के रूप में भी कार्य करती थीं। इस काल में स्त्री महामात्य

की भी नियुक्ति का उल्लेख मिलता है। मेगस्थनीज के वर्जन से ज्ञात होता है कि नारी शिक्षा का महत्व था। पुरूष छात्रों के समान ही स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त करती थी और शिक्षा काल में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती थी। कौटिल्य ने सती होना आत्महत्या करने के समान घृणित व दण्डनीय बताया है।

गुप्तकाल में नारियों को वह सम्मान प्राप्त नहीं था। बाल विवाह का प्रचलन था। विधवाओं का कठोर व कष्टमय जीवन था। पुत्रियों का पारिवारिक सम्पत्ति में भाग नहीं होता था। सती प्रथा के प्रचलन का भी उल्लेख मिलता है। महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। गुप्तकाल में समृद्धिशाली परिवारों में कन्याओं को साहित्यिक और सांस्कृतिक शिक्षा दी जाती थी। इस युग में शीला, भट्टारिका नामक आदि कवित्रियों और लेखिका के रूप में प्रख्यात रहीं।

राजपूत युग में महिलाओं का सम्मान था। राजपूत लोग अपनी स्त्रियों से प्रेम करते और उनका सम्मान करते थे। वह अपने आचार–विचार से विशुद्ध थी, सतीत्व का पालन करती थी, विदेशी विजेता के हाथों दूषित होने की अपेक्षा 'जौहर' कर अपने धर्म और सतीत्व की रक्षा करती थी।

यह युग मध्यकालीन भारतीय नारी के इतिहास का अन्धकारमय युग कहा जा सकता है। सल्तनत काल में महिलाओं को पर्दे में रहना पड़ता था। मध्यकालीन युग में अनेक प्रकार के रूढ़िवादि, परम्पराओं ने स्थान ले लिया था। इस काल में नारी की शिक्षा का प्रायः लोप हो गया। इस युग में एक बहुपति विवाह प्रतिष्ठासूचक माने जाने लगा। इतना ही नहीं, विधवा से अपने पुत्र की संरक्षिका होने का अधिकार भी छिन गया। इस युग में नारी की परिस्थिति इस सीमा तक गिर गई कि वह वस्तु के समान होकर रह गई थी।

आधुनिक युग में नारियों की स्थिति में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व अंग्रेजी शासनकाल में उनकी स्थिति को सुधारने के लिए कई प्रयत्न किये गये। स्त्री समाज के लिए आधुनिक काल एक प्रकार से नवजागरण काल था। महात्मा गांधी ने आजादी की लड़ाई में महिलाओं को जोड़ा, उन्हें शक्ति दी। आजादी से पूर्व अनेक सामाजिक सुधारकों के कारण बाल–विवाह, सती प्रथा, विधवा पुर्नविवाह के लिए 1829 ई0 में सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1856 ई0 में हिन्दू विवाह पुर्नविवाह अधिनियम, 1937 ई0

में हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम आदि विधान इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास रहे। इस दिशा में मुख्य समाज सुधारक थे, राजाराम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द आदि उल्लेखनीय है परन्तु स्वतन्त्रता से पूर्व नारियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व पारिवारिक दशा शोचनीय ही थी। इस काल में भी नारी की दयनीय दशा के कारण अशिक्षा, आर्थिक पराधीनता, बाल विवाह, वैवाहिक प्रथाएं, दहेज आदि थे।

अंग्रेजी शासनकाल में समाज सुधारकों के प्रयास व अंग्रेजी के प्रयास से नारी की शिक्षा पर बल दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राम मोहनराय जैसे समाज सुधारकों ने नारी उत्थान के लिए प्रबल आन्दोलन चलाए। ब्रिटिश काल में नारी की स्थिति में सुधार होना शुरू हो गया था। यही वह काल है जिसमें नारी शिक्षा व रोजगार को मान्यता मिलती आरम्भ हुई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नारियों की स्थिति में अधिक सुधार हुआ है। भारत के संविधान में लिंग के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव को स्वीकारा नहीं गया है। आधुनिक काल में लोकतन्त्र के कारण भारतीय नारियों की दशा में परिवर्तन आया है। आज की आधुनिक नारी शिक्षित ही नहीं उच्च शिक्षित भी हैं। महिला सशक्तिकरण को मूर्त रूप देने के लिए महिलाओं के शैक्षिक, स्वास्थ्य एवं सामाजिक स्तर में सुधार की अनिवार्यता को देखते हुए केन्द्र सरकार द्वारा विभिन्न कार्यक्रम चलाए जा रहें हैं, जैसे स्वाधार, स्वावलम्बन, सशक्त, स्वयंसिद्धा, महिला सामाख्या कार्यक्रम, आशा योजना, स्वर्णिम योजना, बालिका समृद्धि योजना आदि।

थॉमस रिटर फाउण्डेशन सर्वेक्षण के आधार पर महिलाओं के रहने की दृष्टि के आधार पर भारत दुनियाँ का चौथा सबसे खतरनाक स्थान माना जाता है। ऐसा नहीं है कि महिला सुरक्षा के लिए भारत में कानून नहीं है लेकिन कानूनों को सही प्रकार से निर्वहन नहीं हो पाता हैं। आधुनिक नारी भारत में राजनीति, आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत और देश का गौरव बढ़ा रहीं हैं।

अन्त में, हम यह कह सकते हैं कि वैदिक युग से आधुनिक काल तक नारी की दशा में अनेक उतार–चढ़ाव देखे हैं नारी की स्थिति में वर्तमान काल में परिवर्तन की आवश्यकता है। चूँकि वर्तमान में उसे

संवैधानिक अधिकार प्राप्त है, आधी से अधिक महिला आबादी साक्षर है, अपने सम्मान की रक्षा में उसे ही आगे आने की आवश्यकता हैं पुरूषों को भी उनके सम्मान व प्रतिष्ठा की रक्षा करनी होगी व अपनी सोच में परिवर्तन करना होगा कि नारी पूजनीय भी नहीं, न ही दयनीय व न कमजोर है वरन् समान अधिकार की सहभागी हैं।

lUnHkZ %

1. वृहदाण्यकोपनिषद 1.4.3
2. ऋग्वेद 2.41.77
3. अर्थवेद 14.2.74
4. शतपथ
5. ऋग्वेद 3.53.8
6. महाभारत, अनुशासन पर्व 105.15
7. मनुस्मृति 3/56
8. मुखर्जी, राधा कमल. (1959); ''भारत की संस्कृति और कला'', राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, पृ0 274,
9. Jayapalan (2001); India Society and social institution, Atlantic Publishers and distributors P. 145
10. Women in history (2009); National Resource Centre for women.
11. Parihar, Lalita Dhar (2011), Women & Law from Impaverishment to Empowerment : A critique.
12. Majumdar R.C., A.D Pulsalker (1951); The history and culture of the Indian people, Vol., Bombey, Vidyaa Bhawan, P. 391.
13. National Policy for the Empowerment of Women (2001).
14. राधेश्याम; सल्तनकालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास, वोहरा पब्लिकेशन्स, पृ0 284
15. मित्तल, ए0के0 आर, अग्रवाल; भारतीय संस्कृति का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

****

efgyk l'kfDrdj.k % ,d v/;;u

MkW0 lUnhi dqekj feJ*

वर्तमान में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सार्वजनिक क्षेत्र में बढ़ती महिलाओं की संख्या तथा विविध क्षेत्र में उनकी भूमिका यथा वैज्ञानिक, पायलट, डाक्टर, इंजीनियर, वकील, मैनेजर, प्रोफेसर आदि ने उनकी क्षमताओं और योग्यताओं को प्रमाणित किया है। मदर टेरेसा, इन्दिरा गाँधी, किरण वेदी, कल्पना चावला, मेधा पाटेकर, सायना नेहवाल, मैरी काम आदि अनगिनत नाम इस कड़ी में जुड़ते जा रहे हैं, लेकिन जिस दुःख, अभाव, बेचैनी और निराशा से मानव जाति समस्त भौतिक उपलब्धियों के रहते हुए गुजर रही है यह स्वयं इस बात का प्रमाण है कि कही कोई कमी है जो अवरोध उत्पन्न कर रही हैं जहाँ समस्त जनसंख्या का आधा भाग अशिक्षित, अकर्मणय तथा अपंग बनकर रह गया है और देश की प्रगति में उस भाग का नगण्य योगदान रहा हो तो यह मानव जाति के लिए अभिशाप है। महिलाओं के अधिकारों और उनकी अभिप्साओं के औचित्य के विषय में मतभेद नहीं हो सकता लेकिन समाज की संरचना बहुत सीमा तक इस तथ्य से प्रभावित होती है कि उसमें महिलाओं के अधिकारों और उनकी अभिप्साओं की स्थिति क्या है। हमारी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं को शक्ति, ज्ञान और सम्पत्ति का प्रतीक माना गया जिसके फलस्वरूप दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी की पूजा की जाती रही है। समाज में स्त्री और पुरूष को बराबर का दर्जा दिया गया हैं महिला को पुरूष की 'अर्द्धांगिनी''कहा गया जिसके बिना पुरूष किसी भी कर्तव्य की पूर्ति नहीं कर सकता। वैदिक काल के प्रारम्भ में महिला का स्तर बहुत ऊँचा था लेकिन इसके पश्चात् हमारे समाज की मौलिक व्यवस्थाएँ रूढ़ियों में बदलने लगी परिणामतः स्त्रियों के गुण, स्नेह, ममता एवं लज्जा को उनकी दुर्बलता मानकर पुरूष ने उनका शोषण प्रारम्भ कर

*असि0प्रो0, हिन्दी विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

दिया। धीरे–धीरे महिला पराश्रित, निःस्सहाय और निर्बल हो गई और मध्य काल तक आते–आते हिन्दू समाज में महिला की स्थिति दासी के रूप में रह गयी। समय के साथ पुनः महिला को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में अधिकार प्रदान करने के लिए व्यापक सुधार आंदोलन चले और आगे चल कर विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं ने अपनी श्रेष्ठता स्थापित करके यह सिद्ध कर दिया कि वे कहीं से पुरूषों से कम नहीं हैं।

Lor=rk d i'pkr efgykvk dh fLFkfr

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 15 में महिला एवं पुरूष को पूर्ण समानता का दर्जा मिला। सुधार आन्दोलन, महिला संगठन, स्वतंत्रता आन्दोलन तथा स्वतंत्र भारत के संविधान से भारतीय महिलाओं के उत्थान तथा प्रगति के मार्ग खोल दिये हिन्दू विवाह अधिनियम (1955), हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (1956), हिन्दू नाबालिग और संरक्षकता अधिनियम 1956, विशेष विवाह अधिनियम 1954, हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण–पोषण अधिनियम 1956 तथा दहेज निरोधक अधिनियम 1961 आदि उल्लेखनीय अधिनियम है जो महिलाओं को रूढ़ियों से मुक्त कर पुरूषों से बराबरी के स्तर पर आगे बढ़ने के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। धीरे– धीरें महिलाओं की पुरूष पर निर्भरता घटने लगी जिससे स्वतंत्र होकर अपने व्यक्तित्व का विकास करने का उनको अवसर मिला। संचार के बढ़ते साधन, समाचार पत्र और पत्रिकाओं के माध्यम से महिलाओं ने अपने विचार व्यक्त करना प्रारम्भ किया। शिक्षा का प्रसार तथा औघोगिकीकरण से महिलाओं के जीवन में व्यापक परिवर्तन आया। संयुक्त परिवार का विघटन होने से महिला के पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई साथ ही घर से बाहर निकलने की स्वतंत्रता मिली जिससे परिवार तथा अपने समुदाय की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने का अवसर मिला। इससे जागरूकता बढ़ी और अपने स्वास्थ्य के प्रति चैतन्यता तथा आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भरता की ओर उनके कदम बढ़े विविध क्षेत्रों में उनके शक्ति और आत्म विश्वास जागृत करने के लिए अनेक प्रयास हुए और आज कोई क्षेत्र अछूता नहीं जहाँ महिलाओं ने परचम नहीं लहराया हो।

साक्षरता का विकास जीवन की गुणवत्ता का सूचक माना जाता हैं। महिला साक्षरता दर को अगर 1951 से आंकलन करे तो तीव्र वृद्धि हुई

हैं। इस दशक में 8.86 प्रतिशत महिलाएँ ही साक्षर थी जो 1961, 1971, 1981, 1991, 2011 तथा 2012 में क्रमशः 14.35 प्रतिशत, 29.97 प्रतिशत, 29.76 प्रतिशत, 39.29 प्रतिशत, 53.67 प्रतिशत तथा 64. 6 प्रतिशत रही। 2011 की जनगणना में पुरूष तथा महिला की साक्षर जनसंख्या प्रतिशत वृद्धि में महिलाओं की साक्षर प्रतिशत वृद्धि अधिक रही। जो महिला सशक्तिकरण और समानता का सबसे बडा प्रतीक है। आज लड़कियाँ कला तथा विज्ञान वर्ग में स्नातक तथा स्नातकोत्तर के साथ मेडिकल, इंजीनियरिंग, पत्रकारिता, कम्प्यूटर, सेना आदि विविध क्षेत्रों में शिक्षा लेकर भारत की उच्च स्तरीय नौकरी (ईरा सिंघल, आई0 ए0 एस0 की टापर महिला, 2014), प्रोफेसर, डॉक्टर, इंजीनियर, वकील तथा अंतरिक्ष में अपने कदम रख रही है। विश्व में महिला प्रगति की रिपोर्ट 2000 में यूनिसेफ ने प्रस्तुत किया। इस रिपोर्ट में 1980 से 1990 के दशक में महिलाओं के आर्थिक स्थिति की समीक्षा की गई है।

स्वतंत्रता के बाद औद्योगिकीकरण, शिक्षा प्रसार और पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि ने महिलाओं को आर्थिक क्षेत्र में भी आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित किया। स्वतंत्रता से पूर्व मुख्यतः निम्न वर्ग की महिलाएँ ही बाहर निकलकर घरेलू कार्य या उद्योग आदि में कार्यरत हो जीविकोपार्जन करती थी। परन्तु स्वतंत्रता के उपरान्त बडी संख्या में शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कार्यालयों, उद्योगों, मनोरंजन, समाज कल्याण आदि विभिन्न क्षेत्रों की विविध स्तर के आर्थिक कार्यो में महिलाओं की संख्या निरन्तर बढती जा रही हैं। अब तक यह माना जाता था कि महिलाओं का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक वे पूर्णतः आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हो जाती। महिलाओं के कायों को अभी तक अनदेखे रह जाते थे– जैसे घरेलू कार्य, सेवा के कार्य आदि। इनका कोई आर्थिक मूल्य नहीं था। इनसे कोई आय नहीं होती थी। अतः ये काम नहीं थे।

1994 में काहिरा में जनसंख्या और विकास पर अन्तर्राष्ट्रीय कान्फेंस का आयोजन हुआ। 1995 में पेइचिंग मे अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव पर विभिन्न सरकारों के प्रतिनिधि महिला विकास कार्यक्रमों पर सहमत हुए। इसमें लक्ष्य रखे गये कि प्राइमरी शिक्षा के स्तर पर स्कूल जाने वाले लड़के–लड़कियों के मध्य जो अन्तर है उसे

2005 तक कम कर दिया जायेगा। यह भी निर्धारित हुआ कि जहाँ महिलाएं कार्यरत हैं वहाँ कम से कम उनमें से 30 प्रतिशत ऐसे पदों पर होनी चाहिए जो निर्णय ले सकें। इसके साथ ही अन्य संवेदनशील बिन्दुओं पर बल दिया गया। सेकेण्ड्री स्कूलों में लड़कियों और लड़कों का पंजीकरण, गैर कृषि क्षेत्रों (उद्योगों एवं सेवा) में संवैधानिक कार्य करने वाली महिलाओं की संख्या तथा संसद में महिलाओं का प्रतिशत। भारतीय संसद में महिलाओं का अनुपात बहुत कम हैं। लोक सभा में निर्वाचित महिला सांसद का 2009 में पहली बार 10 प्रतिशत से अधिक था जबकि विधान सभा में यह प्रतिशत 5 से कम था। इस संदर्भ में दुनिया में भारत की स्थिति निम्नतम राष्ट्रों की श्रेणी में है। महिला प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्री होने के बावजूद उनके कैबिनेट में अधिकांश सदस्य पुरूष होते थें। बहुत तेजी से बदलाव आ रहा है और महिलाओं की स्थिति को इतिहास पर दृष्टिपात करने पर यही महिला अनुपात और स्थिति एक व्यापक बदलाव को इंगित कर रहा है। यह आवश्यक है कि पिछले वर्षों में तैतीस प्रतिशत महिलाओं के आरक्षण को लेकर लोकसभा एवं विधानसभा में राजनेताओं ने जो समस्या खडी की उसे देखते हुए नहीं कहा जा सकता कि यह प्रतिशत हमारे देश में कब पूरा होगा। इस समस्या को हल करने के लिए यह कानूनी बाध्यता अवश्यक है कि चुने हुए निकायों में महिलाओं का निश्चित अनुपात हो। भारत में पंचायती राज के रूप में यह सामने आया और वर्तमान में स्थाानिक सरकारी निकायों ग्राम पंचायत और नगर निगम के चुनावों में कुल सीट का एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित है। अब ग्रामीण एवं नगरीय स्थानिक निकायों में दस लाख से ज्यादा निर्वाचित महिला प्रधान है जो महिलाओं की राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर व्यापक परिवर्तन तथा सशक्तीकरण का परिचायक है।

महिलाओं की आर्थिक प्रगति का आकलन उनके निर्णयकारी पदों पर होने और आदमी की तुलना में उनकी आय से हो सकता हैं। प्रशासनिक और प्रबन्धन के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या बढ़ी है। वर्तमान में महिलाएँ व्यापरिक क्षेत्रों में अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए कई तरह के अभियान चला रही है। महिलाओं की जागरूकता ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जब तक उनकी आर्थिक स्थिति नहीं सुधरती तब तक उनका सही मायने में

विकास नहीं हो सकता। अतः महिलाएँ वित्तीय बाजार में होने वाले परिवर्तनों में रूचि लेने लगी हैं और उन्हें अपने अनुकूल बनाने की कोशिश कर रही है। ये राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला समर्थक आर्थिक नीतियाँ बनवाने में मुख्य भूमिका कर रही है जो भूमण्डलीकरण के दौर में महत्वपूर्ण है। बदलते तकनीकी से डरने के बजाय आगे बढकर महिलाएँ दक्ष होने की कोशिश में लगी है। महिला विकास तथा सशक्तिकरण के लिए स्त्री पक्ष धर संगठनों का आर्थिक ज्ञान बढ़ाना जरूरी हैं। जब कोई आर्थिक नीति, अन्य योजना अथवा रणनीति का निर्धारण हो उसमें महिलाओं की सहभागिता अवश्य हो। लैगिंक भेदभाव कम करने वाली योजनाओं के साथ मानवता को दृष्टिकोण में रखा जाना चाहिए तभी सही अर्थों में विकास सम्भव है।

lUnHkZ %

1. Chandra, B. (1986); Modern India, National Council of Educational Research and Training, New Delhi.
2. Dandekar,V.M.; Integration of women in economic development.
3. M.K.in HIngorani, A.T.(ed); To The Women Karanch, 1943, P. 8.
4. HIngorani, A.T.(ed); To The Women Karanch, 1943, P. 8.

****

efgyk l'kfDrdj.k % ,d v/;;u

MkO iq:"kkRre yky fot;*

प्रस्तुत शोध–पत्र महिला सशक्तिकरण के विविध आयामों को गहनता से विश्लेषित करने का प्रयास है। अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन 1985 नैरोबी में महिला सशक्तिकरण को परिभाषित किया गया था। महिला सशक्तिकरण का अर्थ है महिला को शक्ति सम्पन्न बनाना। सशक्तिकरण का अर्थ है किसी कार्य को करने या रोकने की क्षमता। दूसरे शब्दों में महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं को पुरूषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वतन्त्रता। महिला सशक्तिकरण के कुछ परिभाषित मानक इस प्रकार माने गए हैं–महिलाओं में आत्मसम्मान व आत्मविश्वास की भावना विकसित करना, महिलाओं की सकारात्मक छवि का निर्माण, महिलाओं में आलोचनात्मक चिन्तन की क्षमता का विकास करना, निर्णय लेने की क्षमता को उन्नत करना, विकास प्रक्रिया में समान भागीदारी सुनिश्चित करना, आर्थिक स्वतन्त्रता के कानूनी ज्ञान का विकास तथा स्वयं के अधिकारों सम्बन्धी सूचनाओं तक अपनी पहुँच को सुनिश्चित करना।

jk"Vªh; efgyk 'kfDr lEiUurk uhfr 2001 dk y{; ,oa mnns';%

इस नीति का लक्ष्य महिलाओं की उन्नति, विकास तथा शक्ति सम्पन्नता है। इस नीति का व्यापक रूप से प्रचार हुआ है ताकि इसके लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित वर्गों को सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित किया जा सके। इस नीति के मुख्य लक्ष्य हैं–

1. महिलाओं की पूर्ण क्षमता की प्राप्ति के लिए महिलाओं के पूर्ण विकास हेतु सकारात्मक आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों के माध्यम से वातावरण का सृजन।

---

*पी0डी0एफ0, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ0प्र0

2. राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सिविल सभी क्षेत्रों में पुरूषों के साथ समान आधार पर महिलाओं द्वारा समस्त मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतन्त्रता का सैद्धान्तिक तथा वस्तुतः उपयोग।
3. राष्ट्र के सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी तथा निर्णय स्तर तक समान पहुँच।
4. सभी स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल, स्तरीय शिक्षा, जीविका तथा व्यवसायिक मार्गदर्शन, रोजगार समान पारिश्रमिक, व्यवसायिक स्वास्थ्य तथा सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा तथा सार्वजनिक पदों में महिलाओं की समान पहुँच।
5. महिलाओं के साथ होने वाले सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन के उद्देश्य से कानूनी प्रणालियों का सुदृढ़ीकरण।
6. पुरूषों तथा महिलाओं दोनों की सक्रिय भागीदारी द्वारा सामाजिक रवैये और प्रथाओं में परिवर्तन।
7. विकास प्रक्रिया में महिला परिप्रेक्ष्यों को शामिल करना।
8. महिलाओं तथा बालिकाओं के साथ होने वाली हिंसा के सभी रूपों तथा भेदभावों का उन्मूलन।
9. सिविल समाज, विशेषकर महिला संगठनों के साथ भागीदारी बनाना तथा उसका सुदृढ़ीकरण।

efgyk vf/kdkjks dks lqj{k.k dks fy, dkuu % संविधान द्वारा प्रदत्त इन महिला अधिकारों को सही ढंग से लागू करने के लिए सरकार द्वारा समय–समय पर विधियों का निर्माण किया गया है। मादा भ्रूण हत्या की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को देखते हुए केन्द्र सरकार द्वारा प्रसवपूर्व निदान तकनीकि अधिनियम 1994 में लागू किया गया जो मादा भ्रूण का पता लगाने की अत्याधुनिक तकनीकि के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगता है। इसके अतिरिक्त महिलाओं के प्रति भेदभाव समाप्त करने के लिए और उन्हें कानूनी संरक्षण देने के लिए सरकार द्वारा निम्नलिखित प्रयास किए गए–

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 2005 पारित करके महिलाओं के सशक्तिकरण का अनूठा प्रयास किया गया। घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम 2005 में पारित किया गया। 73वाँ व 74 वाँ संविधान संशोधन संविधान के अनुच्छेद 40 में दिए गए निर्देशों के अनुपालन में संसद द्वारा 73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन 1992 में पारित किया गया। इस संशोधन द्वारा ग्राम

पंचायतों तथा नगर पालिकाओं में आरक्षित व अनारक्षित वर्ग की महिलाओं हेतु 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई है। 2006 में सर्वोच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने विवाह के रजिस्ट्रेशन को अनिवार्य किये जाने का निर्देश दिया।

Hkkjr d lfo/kku e efgykvk d fy, fo'k"k iko/kku % महिलाओं को विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने वाली संवैधानिक प्रावधान है–

अनुच्छेद 14– संविधान के इस अनुच्छेद में व्यक्ति को विधि के समक्ष समता अथवा विधि के समान संरक्षण का आदेश राज्य को दिया गया है। यह अनुच्छेद महिला तथा पुरुष दोनों के लिए लागू होता है।

अनुच्छेद 16– इस अनुच्छेद द्वारा लोक नियोजन में पुरुष तथा महिला को समान अवसर दिए जाने का निर्देश है। समान कार्य के लिए समान वेतन का निर्देश भी इसी अनुच्छेद में है।

अनुच्छेद 23, 24– इस अनुच्छेद द्वारा नारी के शोषण, बलात्कार, श्रम, महिलाओं का क्रय, विक्रय इत्यादि पर रोक लगाए जाने का निर्देश है।

अनुच्छेद 42 – इस अनुच्छेद में राज्य को ऐसी व्यवस्था करने का निर्देश है जिससे महिलाओं को प्रसूति काल में वे सुविधाएँ मिल सकें जो उन्हें मानवीय आधार पर मिलनी चाहिए।

efgyk l'kfDrdj.k d fy, ;k tuk;k % बालिका श्री योजना, जननी सुविधा योजना, गाँव की बेटी योजना, चिरंजीव बीमा योजना, जननी सुरक्षा योजना, उज्जवला योजना, राजीव गाँधी किशोरी अधिकारिता योजना (सबला), महिला स्वयं सिद्ध योजना, कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना, स्वयं सहायता समूह (SHG), बैंक लिंकेज कार्यक्रम, महिला सामाख्या कार्यक्रम, जेंडर बजटिंग, समर्थ सेवाएँ, स्वाधार (2001), स्वावलम्बन (1982), स्वशक्ति (1998), आशा योजना (2005), स्वर्णिम योजना, बालिका प्रोत्साहन योजना (2006), इन्दिरा गाँधी इकलौती बालिका छात्रवृत्ति योजना, परिवार परामर्श केन्द्र, बालिका समृद्धि योजना, स्टेप समेकित बाल विकास सेवा योजना, बिल योजना, किशोरी शक्ति योजना, राष्ट्रीय पोषाहार मिशन (2001), जीवन भारती महिला सुरक्षा योजना, वन्देमातरम योजना, जननी सुरक्षा योजना, सर्वशक्ति पुरस्कार आदि विविध योजनाएँ संचालित किया जा रहा है।

efgykvksa dk lkekftd l'kfDrdj.k % महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण के लिए शिक्षा व स्वास्थ्य पर ध्यान देना आवश्यक है।

f'k{kk % यदि हम चाहते हैं कि महिलाएँ राष्ट्रीय विकास की धारा में भागीदार बनें तो उनका शिक्षित एवं जागरूक होना आवश्यक है। भेदभाव को दूर करने के शिक्षा को सर्वसुलभ बनाना, निरक्षरता का उन्मूलन हो, महिलाओं में अनुकूल शिक्षा प्रणाली को सृजन करना, स्कूलों में प्रवेश बढ़ाने तथा बालिकाओं की स्कूल छोड़ने की दर कम से कम करने तथा शिक्षा स्तर में सुधार तथा शिक्षा के साथ–साथ महिलाओं के व्यवसायों, तकनीकि कौशलों के विकास हेतु विशेष उपाय किये गए हैं।

LokLF; % 2001 की महिला सशक्तिकरण नीति में महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति समग्र दृष्टिकोण को दृष्टिगत रखते हुए पोषण व स्वास्थ्य सेवाएँ दोनों शामिल हैं। शिशु मृत्यु दर और मातृ मृत्यु दर में कमी लाना प्राथमिकता वाले क्षेत्र है, क्योंकि ये मानव विकास के महत्वपूर्ण संसूचक है।

efgyk l'kfDrdj.k dk eY;kadu % इन सभी कार्यक्रमों के प्रभावी रूप से क्रियान्वयन के बावजूद भी कार्यक्रमों की वास्तविक प्रभाव व नीति में एक अन्तर प्रतीत होता है। ग्लोबल जेण्डर गैप इनडैक्स 2012 ने अनुभव किया कि भारत महिलाओं के विकास में अभी भी पिछड़ा है। भारत 134 देशों में 113 रैंक पर था। यह 2011 में 135 देशों में 113 स्थान पर आ गया। 2012 में 105 पायदान पर रहा। जेण्डर गैप इनडैक्स आर्थिक सहभागिता व अवसर के आधार पर 123 स्थान पर, शिक्षा के आधार पर 121, स्वास्थ्य के आधार पर 131 व राजनीतिक सहभागिता के आधार पर 17 स्थान पर रहा।

निःसन्देह भारत ने महिला साक्षरता के क्षेत्र में प्रगति की है। 1951 में 8–9 प्रतिशत महिला साक्षरता थी जो 2011 में बढ़कर 65.5 हो गई है। मानव विकास रिपोर्ट 2011 के अनुसार 12वीं तक की बालिका शिक्षा 50.4 प्रतिशत थी, जबकि उच्च माध्यमिक तक 26.6 प्रतिशत बालिकाएं शिक्षा प्राप्त कर पाई थी। ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च प्राथमिक स्तर पर लड़कियों की उपस्थिति केवल 20 प्रतिशत व शहरी क्षेत्रों में 39 प्रतिशत थी। सर्व शिक्षा अभियान चलने के बावजूद भी 21.8 प्रतिशत (6–17 वर्ष) की लड़कियाँ स्कूल जाती हैं। आर्थिक सहभागिता में ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अभी भी बहुत अन्तराल है। 49.4 प्रतिशत महिलाओं को ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार प्राप्त हैं।

NFHS-3 की रिपोर्ट में पाया गया कि 15–49 आयु की महिलाओं में 27 प्रतिशत हिंसा पाई जाती है। 55 प्रतिशत शारीरिक हिंसा का शिकार अपने पतियों द्वारा होती है। भारत मानव विकास रिपोर्ट (IHDR - 2011) के अनुसार अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की महिलाओं में कुपोषण क्रमशः 41.2 व 46.6 प्रतिशत है।

समाज में नारी की स्थिति जितनी मजबूत होगी, समाज उतना ही विकसित और प्रभावपूर्ण होगा। हमारे धर्मशास्त्रों में भी लिखा गया है– ;= uk;Lrq iT;rs jeUrs r= norkA महिलाओं को कानूनी, राजनैतिक व आर्थिक सहभागिता को व उन्हें सशक्त करने के लिए विभिन्न कानूनी प्रावधानों, नीतियाँ व कार्यक्रम के माध्यम से केन्द्र व राज्य सरकारों ने महिला सशक्तिकरण को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। महिलाओं के सशक्तिकरण के बिना उनका कल्याण सम्भव नहीं है। सशक्तिकरण के लिए उन्हें स्वयं आगे आना होगा।

lUnHkZ %

1. प्रदीप पन्त (2001); स्वयंसेवी क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण, योजना, अगस्त।
2. Schemes of Economic Empowerment of poor women - Government of India press Information Bureau.
3. World Economic forum (2012); The Global Gender Gap Report ,2012.
4. Government of India (2011); Human Development Report, 2011.
5. Government of India (2010); Annual Report to the people of Employment, Ministry of Labour and Employment, New Delhi.
6. B. Nagaraja (2009); Empowerment of India : A critical Analysis, IQSR Journal of Humanities & Social Sciences.

****

ekuokf/kdkj vkj Ukkjh % ,d v/;;u

Mk- fot; dqekj prqosZnh*

मानवाधिकार को कभी–कभी मूल अधिकार अन्तर्निहित या जन्मजात अधिकार या नैसर्गिक अधिकार भी कहा जाता है अर्थात् मानव को प्रकृति द्वारा ही कुछ अधिकार प्राप्त हैं प्रत्येक नागरिक को इन्हें सुनिश्चित कराना सरकार का दायित्व हैं। मानवाधिकार इस सार्वभौमिक तथ्य की मानव प्रकृति की नायाब कृति है और इस समाज में हर व्यक्ति, हर जाति, हर वर्ग के लोगों को सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार होना चाहिए। विश्व की सभी सभ्यताओं, संस्कृतियों और जीवन आदर्शों का आधार ही मानवाधिकार हैं।

स्वतंत्रता, समानता, आत्मनिर्भरता एवं मातृत्व भाव विकसित करना इसका लक्ष्य हैं। मानवता की रक्षा के लिए वर्तमान युग में समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय की मांग सभ्य समाज की उपज हैं। इसलिए मानवाधिकार के विचार को बढ़ावा देने के लिए कानून बनाना मानवता के गौरव की बात हैं। सभी के व्यक्तिगत अधिकारों की ग्राहता, चाहे वह किसी भी जाति, भाषा, लिंग, धर्म का हो नई बात नहीं हैं। सभी मानव जाति समानता तथा स्वतन्त्रता चाहते है, निरन्तर चलने वाले संघर्ष इसी का परिणाम हैं।

मानव कल्याण के विश्व दृष्टिकोण का विचार प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में सर्वाधिक रहा है– वसुधैव कुटुम्बकम्, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसी मानवतावादी विचारधाराओं का प्रादुर्भाव सबसे पहले भारत में हुआ जो कि अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति का केन्द्रीय आधार हैं। इन्हीं जीवन मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र सभा द्वारा 10 दिसम्बर, 1948 को सार्वभौमिक घोषणापत्र को अपनाया गया। तभी से 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस घोषित किया गया।

---

*असि0प्रो0, बी0एड्0 विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

मानवाधिकारों के इस सार्वभौमिक घोषणा पत्र में 30 अनुच्छेद हैं और इन अनुच्छेदों को मानवता का मैग्नाकार्टा कहा जाता हैं। महासभा ने इन मानवाधिकारों को चार रूपों में प्रस्तुत किया हैं–सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक। वैसे तो मानवाधिकार का सम्बन्ध मात्र मानवीय पक्ष की संवेदना, सहयोग एवं वैचारिक आदान–प्रदान तक ही सीमित नहीं होता हैं। यह किसी सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का व्याकरण होता हैं। जिसके मूल मानवगरिमा और निष्पक्षता निहित होता हैं। संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार सम्बन्धी विधेयक में समानता, शिक्षा, धर्म, सामाजिक सुरक्षा, मानव व्यवहार, न्याय, आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति बच्चों एवं महिलाओं के अधिकार सम्मिलित हैं।

भारतीय संविधान का भाग–3 (अनुच्छेद 12 से 35) मूल अधिकारों की घोषणा करता है और भाग–4 (अनुच्छेद 36 से 51) राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उल्लेख करता हैं। 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की। इस आयोग का गठन राष्ट्रपति के एक अध्यादेश द्वारा 1993 में किया गया था जिसके अगले ही वर्ष 1994 में एक अधिनियम को पारित करके और भी ज्यादा सुदृढ़ व व्यवस्थित बना दिया गया। 1996 में कमेटी ''ऑन द स्टेटस ऑफ वोमेन इन इण्डिया'' का गठन किया गया जिसने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट किया था कि महिलाओं को पुरूषों के समकक्ष दर्जा देकर जिस क्रान्ति की आशा की गयी थी वह अब भी बहुत दूर हैं। 1990 में संसद द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम पारित कर राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया। यह सभा मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन की दिशा में एक सराहनीय एवं प्रशंसनीय कदम हैं।

भारत में आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व नारी समाज करता हैं। यदि पुरूषों की भांति नारी अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं कर पाती हैं, स्वतन्त्रता, समानता की अनुभूमि नहीं कर पाती है, भय, भूख, शोषण एवं अज्ञानता से मुक्त नहीं हो पाती, तो सारी विकास योजनाएँ आयोग एवं संविधानिक व्यवस्था मृगमरीचिका सिद्ध होगी। यही कारण है कि भारतीय संविधान में उन सारी परिस्थितियों को नकारने की पहल की गई, जिनके चलते नारी समाज को मानवधिकारों से वंचित कर दिया गया था।

भारतीय संविधान सभी नागरिकों को (महिलाओं सहित) सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, न्याय प्रदान करता हैं। सरकार ने समय–समय पर

सभी कमजोर वर्गों, जिसमें महिलाएँ शामिल हैं, कि स्थिति में सुधार हेतु अनेकों कानून बनाए है।

इन सकारात्मक प्रयासों के बावजूद आज भी भय, शोषण, हिंसा, असमानता, महिलाओं के जीवन में इसी तरह पीछा नहीं छोड़ पा रहा हैं। जिस तरह मनुष्य के जीवन में मनुष्य की छाया।

विकास के साथ–साथ समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हुआ किन्तु नारी समाज जस का तस रहा। यदि कहीं नारी समाज में परिवर्तन दिखाई पड़ा तो वह उसी मात्रा में रहा जितना नारी के परिवार के पुरूषों ने आवश्यक समझा या जिस हद तक उस परिवार के पुरूषों ने पहल की। पर्दा प्रथा, पुरूषोन्मुखी परम्पराओं एवं पुरूष प्रधान समाज के चलते परिवार के पुरूषों ने महिलाओं को न तो सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की अनुमति दी और न ही सार्वजनिक कार्यकलापों में सहभागिता निभाने का अवसर दिया। यही कारण है कि आजादी के बाद, अनेकों कानून बनने के बाद भी नारी समाज के जीवन में मानवाधिकारों का कोई महत्व नहीं मिला। उनकी कोई अपनी पहचान नहीं बन पायी। उनका सम्पूर्ण जीवन पति व परिवार में ही केन्द्रित था। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से महिलाओं के लिए जो भी कल्याणकारी विकास योजनाएँ कार्यान्वित की गई उनसे महिलाओं में आत्मनिर्भरता विकसित नहीं हो सकी। उन्हें इन योजनाओं का लाभ तभी मिलता है जब उनके परिवार के पुरूष चाहते, उन्हें लाभ उतना ही मिला जितना परिवार के पुरूषों ने स्वीकारा। आज भी नारियों को भय, शोषण, परावलम्बन एवं पुरूषों के नियन्त्रण से मुक्ति नहीं मिली, जो मानवाधिकार के लिए आवश्यक हैं।

lUnHkZ %

1. कृष्णा अय्यर (1992); जस्टिस एट क्रासरोड, न्यू देहली, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, पृ0 22
2. उपेन्द्र बख्शी, (1978); ''ह्यूमन राइट'' एकाउन्ट एबिलिटी एण्ड डेवलपमेन्ट, इण्डियन जर्नल ऑफ इन्टरनेशनल लॉ, पृ0 279, 283
3. प्रतियोगिता दर्पण, मार्च 2008
4. मानचन्द खण्डेला, (2008); महिला सशक्तिकरण : सिद्धान्त एवं व्यवहार, जयपुर, पृ0 43, 44
5. विभा देवसरे; भारतीय महिला : स्वातंयोत्तर छवि की पहचान, आजकल, अगस्त 2007, पृ0 23

****

efgyk l'kDrhdj.k dk lp

Mk0 t0ih0 nc*

प्रस्तुत शोध–पत्र में महिला सशक्तिकरण के वास्तविकता को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है। भारतीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति और भूमिका बहुत कुछ समाज के स्वरूप और विशेषताओं पर निर्भर करती है। उसमें समाज की परम्पराएं कैसी है? वह समाज आधुनिक है अथवा परम्परागत, यह सब सामाजिक परिस्थितियों के रूप को प्रभावित करते है, साथ–ही–साथ समाज का आकार और संरचना भी महिलाओं की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करते है। समाज में होने वाले विकास जैसे–नगरीकरण, जनंसख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, यातायात के साधन इत्यादि भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। वर्तमान परिवेश में पुत्रियों का महत्व धीरे–धीरे बढ़ रहा है। शहरी और ग्रामीण महिलाओं के विचारों में भी परिवर्तन आया है और समाज के प्रतिमानों, मूल्यों के प्रति उनका दृष्टिकोण बदल रहा है। ये शिक्षित महिलाएँ यह समझ रही हैं कि मेरी दयनीय स्थिति के लिए अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, परम्परागत मान्यता तथा समाज का पुरुष प्रधान होना जिम्मेदार है। आज की महिलाएँ चाहती है कि वे अपने अधिकारों के साथ–साथ बौद्धिक जागरूकता एवं आत्मनिर्भरता भी प्राप्त करें। वे अपने पैरों पर खड़ा होने की इच्छा ही नही, बल्कि एक प्रबल क्षमता भी रखती है।

भारतीय महिलाओं को प्रोत्साहित करने एवं विकास की ओर ले जाने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने विभिन्न प्रकार के महिला कल्याण कार्यक्रम, पुरस्कार आदि प्रारंभ किये है। बहुत से अधिनियमों को कानूनी अमली जामा पहनाया गया है। किसी भी समाज में मानवाधिकारों का निर्विवाद महत्व है। व्यक्ति के मन, वाणी व कर्म की स्वतंत्रता का मूल स्त्रोत ही मानवाधिकार है। मानव के अधिकार स्वीकृत सिद्धांत है लेकिन

*विभागाध्यक्ष, बी0एड्0 विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

दुर्भाग्य से हमारे पुरुष प्रधान समाज में इस शब्द का एकमात्र अर्थ पुरुष का अधिकार है।

महात्मा गाँधी ने कहा था– ''स्त्री पुरुष की संगिनी है, जिसकी बौद्धिक क्षमताएँ पुरुष की बौद्धिक क्षमताओं से किसी भी तरह कम नहीं है। पुरुष की प्रवृत्तियों में उन प्रवृत्तियों के प्रत्येक अंग एवं उपांग में उसे भाग लेने का अधिकार है। स्वाधीनता का भी उसे उतना ही अधिकार है जितना पुरुषों को।'' 1893 में न्यूजीलैंड ने पहली बार महिलाओं को मताधिकार दिया जिसके पश्चात 1908 में आस्ट्रेलिया एवं कनाडा में महिलाओं को मत देने अधिकार प्राप्त हुआ।

गाँधी जी ने कहा था, ''स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नही कर सकता। मेरी राय में महिलाओं पर भी ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नही लगाना चाहिए, जो कि पुरुषों पर लगाया गया हो। पुत्र एवं पुत्री में किसी तरह का भेद नहीं होना चाहिए। संविधान लागू होने के छः दशक के बाद भी महिलाओं की समाज में स्थिति, समानता, स्वंतत्रता की प्रतिबद्धता किस हद तक पूरी हुई है का जायजा लेने के लिए यह समय बिलकुल उपयुक्त है। नोबल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन के अनुसार ''भारत को अपनी 1.21 अरब की वर्तमान जनसंख्या में से 3.3 करोड़ गायब हुई औरतों का जवाब देना है।'' वर्तमान समय का सबस ज्वलंत विषय कन्याभ्रूण हत्या है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा का यह क्रूरतम एवं घृणित रूप है। एक ओर जहाँ महिला सशक्तीकरण की बातें की जा रही है, वहीं दूसरी ओर उसके जन्म लेने पर प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। भारत में महिलाओं के प्रति उत्पीड़न की समस्या इतनी व्यापक है कि प्रत्येक 29 मिनट में एक बलात्कार, 19 मिनट में हत्या, 77 मिनट में एक दहेज मृत्यु, 23 मिनट में एक अपहरण, 3 मिनट में हिंसा, 10 मिनट में एक धोखाधड़ी होती है। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय समाज में महिलाओं का दायरा बढ़ा है जो सरकार की सकारात्मक नीतियों, गैरसरकारी संस्थाओं तथा अन्य सामाजिक समूहों के प्रयत्नों का नतीजा है।

शैक्षणिक क्षेत्र में लड़कियों की वर्तमान सफलता भारतीय समाज मे बदलाव की वजह बनने वाली है। भारतीय महिलाओं ने राष्ट्र के

विकास, स्वंतत्रता आन्दोलन, शासन व सामाजिक अभियानों में भी अहम भूमिका निभायी है। इन सबके बावजूद देश की परम्परावादी सोच व सामाजिक स्थितियों ने महिलाओं को आगे आने में रूकावटें खड़ी की हैं। लेकिन जैसे महिलाओं में शिक्षा और जागरूकता बढ़ी देश मे बदलाव की लहर आयी और वे स्वयं बढ़कर महत्ती भूमिका निभाने लगीं। आज महिलाओं में जागरूकता आ रही है और उनका आत्मविश्वास बढ़ रहा है तो इसकी वजह उनका आर्थिक–सामाजिक विकास है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि आज भारतीय महिलाओं के कल्याण और सशक्तिकरण के लिए राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक पोषण मिला है। देश में महिलाओं की स्थिति में प्रत्येक क्षेत्र में सुधार आया है, लेकिन समाज में उन्हें वाछिंत स्थान दिलाने हेतु अभी भी इस दिशा में बहुत कुछ किया जाना बाकी हैं।

lUnHkZ %

1. ऋतु सारस्वत, महिला अधिकारिताः एक विश्लेषण, योजना (हिन्दी), अक्टूबर 2006
2. कौशिक, आशा. 2004; नारी सशक्तिकरण : विमर्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर
3. भट्टाचार्य, सुनीलकान्त. 2004; भारत की सामाजिक समस्यायें, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
4. राधा कुमार. 2005; स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,

****

Hkkjr e efgykvk d ekuokf/kdkj

MkO lUnhi dekj feJ*
MkO Hkkjrh ik.M;**

अधिकारों के क्रम में जब हम मानव अधिकारों की बात करते हैं तो पाते हैं कि मानव अधिकारों की यह अवधारणा अधिकारों की अपेक्षा अधिक व्यापक है। मानव अधिकारों से तात्पर्य उन सब परिस्थितयों व पर्यावरण से होता है जो मानव को मानव के रूप में अपने अस्तित्त्व को कायम करने व व्यक्तित्व के विकास तथा निर्माण के लिये अनिवार्य होता है। मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो हमारी प्रकृति या स्वभाव में होते है इसके अभाव में हम मानव के रूप में हम अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। मानव अधिकार कभी–कभी मौलिक अधिकार या मूल अधिकार या प्राकृतिक अधिकारों के नाम से पुकारे जाते हैं। मौलिक अधिकार वे अधिकार है जिनको किसी व्यवस्थापिका द्वारा छीना नहीं जा सकता है। प्राकृतिक अधिकार मनुष्य तथा नारी दोनों से संबंधित हैं साथ ही वे उनके स्वाभाव के अनुकूल होते हैं इस दृष्टि से मानव अधिकारों की परिधि में केवल प्राकृतिक उपहार जैसे हवा, जल, पानी ही नहीं आते हैं बल्कि इनके साथ–साथ सम्मान से जीने, पोषण व रक्षण प्राप्त करने सहित वे सब उपागम जो व्यक्तिव के विकास के लिये आवश्यक हैं सम्मिलित किया जा सकता है।

मूल अधिकारों एवं मानव अधिकारों में बुनियादी रूप से कुछ भेद है, सभी मूल अधिकारों को मानव अधिकार नहीं माना जा सकता। जबकि सभी मानव अधिकारों को मूल अधिकारों की श्रेणी के अन्तर्गत रखा जा सकता है जैसे मत देने का अधिकार। विचार अभिव्यक्तित्व की स्वतंत्रता का अधिकार मूल अधिकार है न कि मानव अधिकार क्योंकि इन अधिकारों

*असि0प्रो0, हिन्दी विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0
**दुर्गा चौक, जमनियाँ, गाजीपुर, उ0प्र0

के बगैर भी मनुष्य अपना अस्तित्व कायम रख सकता है इसके विपरीत जीने एवं सुरक्षा प्राप्त करने के अधिकार मूल अधिकार हैं और मानव अधिकार भी, क्योंकि इनके अभाव में मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ सकता है। मनुष्य को जो अधिकार प्राप्त हुए हैं वह जन्म से ही प्रकृति द्वारा प्राप्त होते हैं। प्रसिद्ध राजनीतिक उदारवादी विचारक जानलॉक ने कहा है कि, 'मनुष्य का जीवन स्वतंत्रता एवं सम्पत्ति के अधिकार प्रकृति से प्राप्त हुए हैं जिन्हें राज्य भी छीन नहीं सकता। आज मानव जाति के सामने सबसे बड़ी समस्या सम्मानपूर्वक जीवनयापन की है। पग–पग पर वह तिरस्कृत और असुरक्षित एवं उत्पीड़ित है। मानव जाति पर जितने कहर इन दिनों ढाये जाने लगे हैं, उतने शायद पहले कभी सुननें को नहीं मिलें सबसे ज्यादा पीड़ित तो आज की नारी है, नारी उत्पीड़न की घटनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। यह एक प्रमाणित तथ्य है कि दुनियाँ में सबसे ज्यादा अत्याचार महिलाओं के खिलाफ ही होते हैं इस परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के मानव अधिकार काफी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

विश्व के सभी देशों में महिलाओं को विशेष अधिकार दिये गए हैं ताकि वे सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व तक अधिकांश राष्ट्रों में मानव अधिकारों के अस्तित्व एवं इनकी रक्षा की संस्कृति विकसित हो चुकी थी इसी क्रम में 1920 में राष्ट्र संघ नाम का अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का गठन किया गया। इसी संस्था की मौजूदगी के बावजूद भी संसार की धरती पर द्वितीय विश्व युद्ध लड़ा गया, जिसमें खुलकर मानव अधिकारों की होली जलाई गई, उनको देखकर सारी मानवता सिहर उठी। अन्तर्राष्ट्रीय रंग मंच पर शान्ति की स्थापना एवं मानव अधिकारों की रक्षा के लिये अक्टूवर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ नाम की संस्था का उदय हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा द्वारा 10 दिसम्बर 1948 के प्रस्ताव क्रमांक 217 आ (।।।) द्वारा मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा हुई।

भारत में महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभावों का उन्मूलन करने के अभिसमय एवं समिति को अंगीकृत करने के साथ–साथ महिलाओं के मानव अधिकारों से संबंधित ''वियना घोषणा पत्र'' 1993 तथा क्रियान्वयन कार्यक्रम को भी मान्यता दे दी है। उक्त घोषणा पत्र में कहा गया है कि

महिलाओं और बच्चियों के मानव अधिकार सार्वदेशिक मानव अधिकारों के अहरणीय अनिवार्य व अविभाज्य भाग हैं। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक नागरिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में महिलाओं की समान एवं पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करना तथा उनके साथ किये जाने वाले सभी प्रकार के भेदभावों का उन्मूलन किया जाना अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के प्राथमिक उद्देश्य हैं।

पिछले कुछ वर्षों में भारत के महिला वर्ग में अपने मानव अधिकारों के प्रति पर्याप्त अंश में जागरूकता की अभिवृद्धि हुई है तथा महिलाओं के अनेक गैर–सरकारी संगठन उस दिशा में सक्रिय हो उठे हैं। विशाखा बनाम राजस्थान राज्य 1992 में देश के गैर–सरकारी संगठन की पहल का उदाहरण है इसे बाद में उच्चतम न्यायालय में एक याचिका प्रस्तुत हुई थी जो कि विशाखा नामक एक महिला कर्मचारी के यौन उत्पीड़न से संबंधित था। इन महिला संगठनों ने इसे बाद में एक महिला सामाजिक कार्यकर्ता के साथ उसी के सहयोगियों द्वारा राजस्थान के एक ग्राम में सामूहिक बलात्कार के दृष्कृत्य का मामला उठाया और माँग की थी कि चूँकि भारत में कर्मचारियों के कार्यस्थल अथवा कार्यालय परिसरों में बलात्कार को प्रतिबंधित एवं मना किये जाने वाली किसी भी विधि का अभाव है अतः न्यायपालिका को भारतीय संविधानों के प्रावधानों, महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव बरतने वाले अपराधों के उन्मूलन अभिसमय तथा तत्संबंधी समिति की महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की रोकथाम करने वाली सामान्य संख्या 19 को दृष्टि में रखकर स्वयं एक ऐसी वाद विधि की व्यवस्था करनी चाहिए जो इस क्षेत्र में भारतीय संसद की निष्क्रियता की भरपाई कर सके। उच्चतम न्यायालय के सामने यह प्रश्न था कि महिलाओं को यौन उत्पीड़न से संरक्षण दिलाना वस्तुतः राज्य का दायित्व है?

भारतीय संविधान में यद्यपि लिंग के आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव बरतने का निषेध किया है तथा उन्हें समुचित एवं मानवीय परिस्थितयों में कार्य करने के अधिकार की गारन्टी दी है फिर भी यौन उत्पीड़न से महिलाओं का संरक्षण करने एवं ऐसे अपराध के लिये दोषी व्यक्तियों को दंण्डित करने का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों

में उच्चतम न्यायालय ने 1997 में अपना ऐतिहासिक निर्णय सुनाते हुए घोषणा की भारतीय संविधान में महिलाओं के मानव अधिकार की व्याख्या महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन करने वाले अभिसमय के प्रावधानों को दृष्टि में रखकर करना चाहिए।

lUnHk %

1. कान्स्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, इस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, 1980, पृ0 5
2. एलागा लैड्सवर्ग. 1998; लेविस–बिंगिग इक्वेलिटी होम, दि युनाईटेड नेशन्स डेवलेपमेंन्ट फण्ड फॉर वीमेन, न्यूयार्क, पृ0 6,7
3. मिश्र, काशी प्रसाद एवं रस्तोगी गौरीनाथ. 1967; अन्तर्राष्ट्रीय विधि, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ0 1673
4. डॉ0 वसु दुर्गादास. 2006; भारत का संविधान : एक परिचय, बटरवर्थ वाधवा प्रकाशन, नागपुर

****

efgyk m|eh leL;k ,oa fodkl % ,d voykdu

Mk0 lfuy dqekj*

महिला उद्यमी से आशय महिला अथवा महिलाओं के उस समूह से है जो किसी व्यावसायिक उपक्रम की जोखिम उठाता है, संगठन, संचालन एवं नियंत्रण करता है, न्यूनतम 51 प्रतिशत पूँजी पर उसका वित्तीय हित होता है तथा उपक्रम द्वारा सृजित रोजगार में कम से कम 51 प्रतिशत भाग महिलाओं को प्रदान करता है।

एक समय था जब हमारी परम्परावादी विचारधारा ने देश की महिलाओं को घर की चारदीवारी में बंद करके रख दिया था उनका कार्य मात्र घर को साफ–सुथरा रखना, लम्बा घूँघट करना, परिवार के सदस्यों के लिए भोजन पकाना तथा सन्तान उत्पत्ति करना मात्र ही था औरत को मर्द की भोग विलास की वस्तु तथा जायदाद समझा जाता था। महिलाओं की खरीद फरोख्त एक आम बात थी। महिला के विरोध को सख्ती से दबा दिया जाता था उसे किसी के समक्ष अपनी वेदना प्रकट करने का अधिकार नहीं था। पुरूष द्वारा नियंत्रित समाज में महिला को बोलने तक का अधिकार नहीं था, किन्तु धीरे–धीरे समाज में चेतना आना शुरू हुआ। चारो ओर समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने में आने लगे। आधुनिक युग का उदय हुआ शिक्षा का प्रसार होना शुरू हुआ लोगों में जागरूकता आना शुरू हुआ महिलाओं के प्रति पुरानी अवधारणाओं का तेजी से उन्मूलन किया जाने लगा। शिक्षा के द्वार उनके लिये खोल दिये गये हैं। जगह–जगह पर बड़ी संख्या में महिला विद्यालयों तथा महिला महाविद्यालयों की स्थापना की जा रही है जहाँ पर वे विभिन्न विषयों का शिक्षण प्राप्त कर रही हैं। महिलाओं के लिए प्रशिक्षण संस्थानों की भी स्थापना की जा रही है।

यदि देखा जाय तो भारत में एक लम्बी अवधि तक पुरूषों का ही उद्यमिता के क्षेत्र में एकाधिकार रहा है। वह आज भी काफी सीमा तक

*असि0प्रो0, वाणिज्य विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

विद्यमान है। संचालक, प्रबंध संचालक, प्रबंधक, सचिव आदि के रूप में पुरूषों ने ही विभिन्न प्रबंधकीय कार्यों एवं भूमिकाओं का निर्वाह किया है। विगत तीन–चार दशकों में हुए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तनों के फलस्वरूप उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं का आगमन हुआ है। सन् 1991 में घोषित नवीन औद्योगिक नीति जिसमें उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण को प्रोत्साहित किया गया था तथा शिक्षा के निरंतर बढ़ते प्रसार ने उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं के आगमन का व्यापक स्तर पर स्वागत किया है। अमेरिका, यूरोप एवं जापान के बाद अब भारत में भी उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

आज भारत में विभिन्न परम्परागत उद्योगों में महिला उद्यमियों का ही बोलबाला है, जैसे– पापड़, मसाले, टोकरी बनाना, चटाई बनाना, हथकरघा उद्योग, गुड़िया बनाना, सिलाई करना, बुनाई करना, ब्यूटी पार्लर चलाना, फोटो स्टेट, मुर्गी–पालन, डेकोरशन का सामान तैयार करना, खिलौने बनाना, गाँवों व कस्बों में परचून की दुकान करना आदि। अब धीरे–धीरे भारत में महिला उद्यमी गैर–परम्परागत उद्योगों में भी तेजी से प्रवेश कर रही हैं जैसे इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रोनिक्स, प्लास्टिक, टैक्सटाइल इंजीनियरिंग, डेरी, रेडीमेड कपड़े, साबुन, खाद्य सामग्री आदि। यही नहीं आज भारत में विभिन्न सरकारी तथा गैर–सरकारी एजेंसी भी महिलाओं को उद्यमिता की ओर आकर्षित कर रही है। इन सभी प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत में महिला उद्यमियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। एक अनुमान के अनुसार जहाँ 1950–51 में भारत में महिला उद्यमियों की संख्या मात्र 6000 थी, वहीं सन् 2005–06 में बढ़कर चार लाख से भी अधिक हो गयी। अभी हाल में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली तथा उसके आस–पास के क्षेत्रों में इलेक्ट्रोनिक्स, इंजीनियरिंग तथा परामर्शदाता आदि गैर–परम्परागत औद्योगिक क्षेत्रों के लगभग 40 प्रतिशत भाग पर महिला उद्यमियों का ही साम्राज्य है।

महिला उद्यमियों के सम्बंध में आई0आई0टी0 दिल्ली द्वारा किये गये अध्ययन के अनुसार अमरीका तथा कनाडा में महिला उद्यमी 1/3 लघु व्यवसायों की स्वामी हैं। ब्रिटेन में महिला कार्यशक्ति में सन् 1980 से पुरूषों की तुलना में तीन गुना वृद्धि हुई है। एशिया के देशों में महिलाओं का कुल कार्यशक्ति का 40 प्रतिशत स्थान है। चीन में व्यवसाय शुरू करने के मामले में महिलायें पुरूषों से दो गुना आगे रहती है।

सम्पूर्ण भारत में सन् 1987–88 में सर्वेक्षण के अनुसार कुल लघु इकाईयों में से 5.15 प्रतिशत लघु इकाइयाँ महिला उद्यमियों द्वारा थी तथा वे ही उसकी स्वामी थी। भारत की सर्वाधिक शक्तिशाली 50 कारोबारी महिलाओं की एक सूची नवम्बर 2013 में जारी की गयी जिसमें चन्द्रा कोचर को आई0सी0आई0सी0आई0 बैंक की प्रबंध निदेशक व मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में शीर्ष स्थान दिया गया। एक्सिस बैंक की शिखा शर्मा व कैप जैमिनी की अरूणा जयंती का क्रमशः दूसरा व तीसरा स्थान है जबकि चौथा व पाँचवा स्थान अपोलो हास्पिटल की प्रबंध निदेशिका प्रीती रेड्डी व टैफे की सी0ई0ओ0 मल्लिका श्रीनिवासन का है। अतः इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि भारत में महिला उद्यमियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसका मुख्य कारण महिला शिक्षा में निरंतर वृद्धि होना है। बढ़ती हुई आर्थिक स्वतंत्रता तथा सामाजिक विचारधारा में हो रहे परिवर्तन के परिणामस्वरूप महिला उद्यमियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

इन सभी प्रयासों के बावजूद इस सत्यता से इनकार नहीं किया जा सकता है कि पश्चिमी देशों जैसे अमेरीका, कनाडा, इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि की तुलना में आज भी भारतीय महिला उद्यमी पुरूष उद्यमियों की तुलना में काफी पीछे है। एक लम्बे समय से उद्यमिता के क्षेत्र में पुरूष उद्यमियों का एकाधिकार रहा है। वे अपनी इस एकाधिकारी स्थिति को आसानी से नहीं छोड़ना चाहता है। परिणामस्वरूप महिला उद्यमियों को किसी उद्यम की स्थापना से लेकर जब तक चलता रहता है, पग–पग पर विभिन्न कठिनाइयों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें से प्रमुख कठिनाइयाँ एवं समस्यायें निम्नलिखित है– 1. तकनीकी ज्ञान का अभाव 2. व्यावसायिक शिक्षण प्रशिक्षण का अभाव 3. विपणन की समस्यायें 4. सामाजिक बाधाएँ 5. वित्त सम्बंधी समस्याएँ 6. पर्याप्त कच्चे माल की पूर्ति में कमी 7. आत्म विश्वास में कमी तथा जोखिम वहन करने की क्षमता का अभाव आदि।

उपुर्यक्त समस्याओं के समाधान के लिए भारत सरकार द्वारा निम्नलिखित कदम उठाये गये– 1. महिला विकास निधि की स्थापना 2. माइक्रो साख योजना 3. राष्ट्रीय महिला कोष 4. महिला उद्यमियों की भारतीय परिषद 5. एक आई0सी0सी0आई0 महिला संगठन 6. महिला उद्यमियों की विश्व संस्था की स्थापना 7. राज्यों तथा केन्द्र सरकार ने विमैन कम्पोनेण्ट प्लाण्ट जिनके अन्तर्गत सभी महिला सम्बंधित क्षेत्रों में 30

प्रतिशत कोष आरक्षित किये गये हैं तथा लघु एवं कुटीर उद्योग क्षेत्रों में ऋण तथा विपणन की सुविधाएँ महिला उद्यमियों को महिला विकास निगम द्वारा प्रदान की जाती है। 8. आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा महिला उद्यमियों के लिए पृथक औद्योगिक बस्ती की स्थापना 9. महिलाओं में उद्यमिता के गुणों के विकास के लिए प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY) तथा उद्यमिता विकास कार्यक्रम (EDP) प्रारम्भ किये गये हैं।

l|>k0 % भारत में महिला उद्यमिता के विकास के लिए विशाल क्षेत्र विद्यमान है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकारी तथा निजी क्षेत्र दोनों मिलकर महिला उद्यमियों के प्रति अपना परम्परागत दृष्टिकोण का उन्मूलन करके भारत में महिला उद्यमिता के विकास में व्यवहारिक एवं सक्रिय दृष्टिकोण अपनायें। इस दिशा में निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं–

1. भारत में महिला उद्यमिता विकास के लिए पृथक तकनीकी संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिए जहाँ उन्हें आधुनिकतम प्रौद्योगिकी के अध्ययन का अच्छे अवसर प्रदान किये जायें।
2. महिला उद्यमियों को उद्यमिता के क्षेत्र में शिक्षण–प्रशिक्षण देने के लिए ऐसी अलग संस्थानों की स्थापना की जाय, जहाँ यह सुविधा निःशुल्क या रियायती दरों पर उपलब्ध करायी जाये।
3. विभिन्न सार्वजनिक वित्तीय संस्थानों तथा बैंकों में विशिष्ट वित्तीय कोशिकाओं की स्थापना की जाय जो महिला उद्यमियों को रियायती दरों पर आसान शर्तों पर आवश्यक वित्त प्रदान कर सकें।
4. महिला उद्यमियों को विपणन सहकारितायें स्थापित करने के लिए हर सम्भव प्रोत्साहन एवं सहायता प्रदान की जाये। ये विपणन सहकारितायें महिला उद्यमियों द्वारा निर्मित उत्पादों को एक सुविधाजनक स्थानों पर एकत्रित करें और लाभप्रद मूल्यों पर उनका विक्रय करें।
5. महिला उद्यमियों के लिए दुर्लभ तथा आयातित कच्चे माल की उपलब्धता प्राथमिकता के आधार पर करायी जानी चाहिए। उनके द्वारा निर्मित उत्पादों के लिए अनुदान भी दिया जा सकता है ताकि उनका विक्रय प्रतियोगी मूल्यों पर हो सके।
6. बड़े दुःख की बात है कि भारतीय समाज महिला उद्यमियों के प्रति बड़ी ही नकारात्मक सोच रखती है। हमें इस नकारात्मक सोच को

बदलना चाहिए और उनके स्थान पर सहयोगात्मक विचार को विकसित करना होगा क्योंकि महिला उद्यमी भी समाज का ही अंग है। अतः महिला तथा पुरूष उद्यमियों में भेदभाव नहीं होना चाहिए। हमारी दृष्टि में महिला उद्यमियों में अपने उद्यमों को स्थापित करने एवं उनका प्रबंध करने की क्षमता एवं इच्छा शक्ति विद्यमान है। आवश्यकता इस बात की है कि उनको हर सम्भव प्रोत्साहन एवं समर्थन प्रदान किया जाय। यदि भारत में महिला उद्यमियों के लिए परिवार, सरकार तथा निजी क्षेत्र का सक्रिय सहयोग प्राप्त हो तो उनके विदेशी महिला उद्यमियों की तुलना में पिछड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।

अंत में, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत में महिला उद्यमियों का भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल है। ये भारत के आर्थिक विकास में रचनात्मक योगदान प्रदान करने में पूर्णतः सक्षम है। भारत को गरीबी से ऊपर उठाने का निश्चित तथा एकमात्र तरीका देश की महिलाओं को शिक्षित करना तथा उनके स्तर को ऊँचा उठाना है।

lUnHkZ %

1. अग्रवाल, आर0 सी0 एवं अग्रवाल संजय.2013; उद्यमिता के मूल आधार, एस0वी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
2. गुप्ता, संजय. 2012; उद्यमिता के मूल आधार, एस0वी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा।
3. अग्रवाल, डॉ0 प्रवीन कुमार एवं मिश्रा, डॉ0 अवनीश कुमार, 2014;उद्यमिता के मूल आधार, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
4. अग्रवाल, आर0सी0, गुप्ता डॉ0ओ0पी0, 2014; उद्यमिता के मूल आधार, एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग, हाऊस, आगरा।

****

EkgkRek xk/kh dk fL=;k d ifr fopkj

Mk- vuh'k dekj oek*

गाँधी जैसे बिरले ही नेता होंगे जिनका सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन खुली पुस्तक के समान था। इस संदर्भ में बा–बापू के अंतरंग संबंधों की चर्चा बापू के स्त्रियों संबंधी विचारों के वैयक्तिक पहलू को समझने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। गाँधी ने आत्मकथा में इस प्रकार की कई घटनाओं के वर्णन के साथ ही स्वयं की भावनाओं, प्रतिक्रियाओं और अंतर्द्वन्द्वों का पारदर्शिता के साथ वर्णन किया है। यही कारण है कि गाँधी और कस्तूरबा के परस्पर संबंधों की दृष्टि से उनकी आत्मकथा से कुछ दृष्टांतों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा।

गाँधी का विवाह 13 वर्ष की अल्पायु में हो गया था। गाँधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उन्हें पिता के अंतिम समय में उनकी मृत्यु–शैय्या के पास होना चाहिये था किन्तु कस्तूरबा के प्रति आकर्षण के कारण वे रुग्ण पिता को छोड़कर अपने कक्ष में चले गये। इसी प्रकार विवाह के पश्चात् किशोरावस्था के समय कस्तूरबा पर संदेह करते रहते थे तथा उन पर अपना पूर्ण नियंत्रण रखने का प्रयास करते और कई प्रकार के निरर्थक निर्देश दिया करते थे।[1]

अफ्रीका के प्रवास के दौरान डरबन की एक चर्चित घटना गाँधी तथा कस्तूरबा के संबंधों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। डरबन में वकालत करते समय गाँधी के मुवक्किल प्रायः उनके आश्रम में ही रहते थे। आगन्तुकों की जाति के संबंध में बा कभी–कभी प्रश्न करती और कभी–कभी उलाहनें भी देती थीं।[2] आश्रम में रहने वाले मुवक्किलों के मैले बर्तन की सफाई का कार्य भी कभी बापू और प्रायः बा किया करती थीं। गाँधी के विचारों से पूर्णतया आश्वस्त नहीं होते हुए भी बा सफाई का काम करती थी। पंचम जाति के एक मुवक्किल के सफाई के बर्तन को अनमने भाव से उठाते हुए

*सम्पादक, रिसर्च डिस्कोर्स (जर्नल), वाराणसी (उ0 प्र0)

बा की आँखों में आँसू भर आये। नीची जाति के व्यक्ति के मैले का बर्तन उठाना उनके लिये असहाय था। गाँधी यह दृश्य देखकर अत्यधिक क्रोधित हुए। उन्हें यह बुरा लगा कि कस्तूरबा यह कार्य सहज भाव से नहीं कर रही है और उनके मुख पर क्रोध, अनमना भाव तथा आँसू नजर आ रहे है। उन्होंने बा को खूब कहा, सुना और प्रताड़ित करते हुए बलपूर्वक घर से निकालने का प्रयास किया।[3] कस्तूरबा ने दुःखी होकर कहा कि ''मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, इसलिए मुझे तुम्हारी डाँट–फटकार सहनी ही होगी। अब शरमाओं और दरवाजा बन्द करो। कोई देखेगा तो दोनों में से एक की भी शोभा नहीं रहेगी।[4]'' गाँधी ने बा को अंदर लेकर दरवाजा बंद लिया। गाँधी एक ओर तो स्वयं के लिए स्थापित आदर्शों को बा पर आरोपित करते हैं तथा दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने घर के स्वामी का अधिकार जताते हुए असहाय पत्नी को रात के अधिकार जताते हुए असहाय पत्नी को रात के अंधेरे में घर से निकालने का प्रयास किया। बा ने विवश होकर अपने संस्कार और विश्वास के विपरीत सफाई के कार्य किये तथा कई अवसरों पर अपनी स्वाभाविक इच्छाओं का भी दमन किया। यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि बापू सार्वजनिक जीवन में जिन आदर्शों को प्रतिपादित करना चाहते थे उनका आरंभ स्वयं अपने परिवार से करते थे किन्तु इस प्रक्रिया में कभी–कभी बा के प्रति उनका व्यवहार असंवेदनशील, आरोपित और अनुचित होता था।

सन् 1896 में गाँधी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौट रहे थे उस समय नेटाल से विदाई के पूर्व उन्हें कई उपहार दिये गये जिनमें सोने–चाँदी के गहने कस्तूरबा के लिये थे। सेवा के बदले भेंट स्वीकार करना गाँधी को अपने आदर्शों के विपरीत लगा और उन्होंने बा से आग्रह किया कि वे सारे गहने लौटा दें।[5] कस्तूरबा ये गहने अपनी बहुओं के लिए रखना चाहती थीं। जब उनकी अश्रुधारा और दलीलों के सम्मुख गाँधी दृढ़ रहे तो बा ने कहाः– ''यह गहने वापस नहीं दिये जा सकते और मेरे हार पर आपका क्या अधिकार है।''[6] गाँधी के इस तर्क पर कि ये गहने बा की नहीं अपितु उनकी सेवाओं के बदले दिये गऐ है, बा उत्तेजित होकर बोली– ''आपकी सेवा मेरी सेवा भी हुई। मुझसे आपने दिन–रात मजदूरी करवाई, क्या वह सेवा में

शुमार न होगी? मुझे रुलाकर भी आपने हर किसी को घर में ठहराया और उसकी चाकरी करवायी, उसे क्या कहेंगे?[7] किन्तु गाँधी ने कस्तूरबा की अनसुनी करते हुए उनके सारे गहने वापस कर दिए।

एक अन्य दृष्टांत भी इस संबंध में उल्लेखनीय है। गाँधी सर्वप्रथम अपने परिवार को दक्षिण अफ्रीका लेकर गये, उन दिनों उनका मानना था कि ''सभ्य माने जाने के लिए हमारा बाहरी आचार व्यवहार यथासंभव युरोपवासियों से मिलता जुलता होना चाहिए।''[8] गाँधी ने इस दृष्टि से पत्नी तथा बच्चों की वेशभूषा, आधुनिक माने जाने वाले पारसियों जैसी चुनी। असुविधा होने के बावजूद गाँधी ने उन्हें जूते–मोज़े पहनने तथा छुरी काँटे से खाना खाने के निर्देश दिये जो उन्होंने विवश हो स्वीकार किये। किन्तु जब स्वयं गाँधी का पाश्चात्य जीवन–शैली से मोह भंग हुआ तो उन्होंने परिवारजन को पुनः जूते–मोज़े और वेशभूषा को बदलने के लिये निर्देश दिये। गाँधीजी के शब्दों में, ''शुरु में जिस तरह से परिवर्तन दुःखदायक थे, उसी प्रकार आदत पड़ने के बाद उनका त्याग भी कष्टप्रद था।''[9]

गाँधी जी अपने पुत्रों को विलायत ''कृत्रिम शिक्षा'' के लिये भेजने के पक्ष में नहीं थें। यही नहीं उन्होंने अपने पुत्रों की विद्यालय की औपचारिक अंग्रेजी शिक्षा से भी वंचित रखा। गाँधी के इस दृष्टिकोण से उनके पुत्रों एवं कस्तूरबा को शिकायत रही किन्तु उनकी सभी दलीलों के बावजूद गाँधी जी अडिग रहे।[10] यहाँ तक कि उनके मित्र प्राणजीवन मेहता द्वारा गाँधीजी के किसी एक पुत्र को लन्दन में शिक्षा के लिए दी गई छात्रवृत्ति को भी गाँधी ने सर्वप्रथम एक पारसी युवक तथा उसके पश्चात् अपने भतीजे छगनलाल को देने को निश्चय किया। गाँधी के पुत्र हरिलाल इस घटना से अत्यन्त खिन्न हुए एवं उन्होंने अपने पिता पर अपने पुत्रों की कीमत पर महात्मा की पदवी प्राप्त करने का आरोप लगाया।[11]

इन सभी दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि वैयक्तिक स्तर पर गाँधी के बा के साथ सम्बन्धों में परम्परागत पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण ही अधिक झलकता है। प्रायः .पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत सभी प्रकार की निर्णय प्रक्रिया में पुरुष के एकाधिकार की परंपरा रही है। पत्नी घर–परिवार के लिये अपना सर्वस्व समर्पित करती है और उसे गृहस्वामिनी भी कहा जाता है, किन्तु

व्यवहार में पुरुष घर और पत्नी पर अपना नियंत्रण आरोपित करता रहा है। यहाँ तक कि घर के स्वामी के रुप में उसने पत्नी को घर से निकालने के अधिकार का प्रयोग भी किया हैं। ऐसे अवसरों पर पत्नी के सहधर्मिणी और अधर्मिणी और अर्धांगिनी के रुप में प्रतिष्ठित आदर्शों की व्यवहार में सदैव अवहेलना होती रही है। कुछ दृष्टांतों से ऐसा प्रतीत होता है कि गाँधी भी इस व्यवहार शैली से अछूते नहीं रहे। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है वैवाहिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में गाँधी जी ने भी पत्नी पर अधिकार और नियंत्रण रखने के प्रयास किये।[12]

गाँधी जी को स्वयं कस्तूरबा के प्रति अपने दमनात्मक व्यवहार का एहसास था। उन्होंने जिस संवेदना और सच्चाई से बा के साथ उनके संबंधों के संदर्भ में लिखा है, उससे यह स्पष्ट है कि बापू के मन में अपने व्यवहार के लिये दुःख और पश्चाताप था। उनकी आत्मकथा में बा के प्रति उनके व्यवहार के लिये अपराधबोध की भावना झलकती है। उन्होंने कस्तूरबा की असहाय स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।''– मैंनें अपनी धर्मपत्नी को कितने ही कष्ट पहुँचाए हैं। इस हिंसा के लिए मैंनें अपने आपको कभी माफ नहीं किया है। ऐसे दुःख हिन्दू स्त्री ही सहन करती है, और इस कारण मैने स्त्री को सदा सहनशीलता की मूर्ति के रुप में देखा है।.....पत्नी–पति की दासी नहीं, पर उसकी सहचारिणी है, सहधर्मिणा है, दोनों एक दूसरे के सुख–दुःख के समान साझेदार हैं और भला–बुरा करने की जितनी स्वतंत्रता पति को है उतनी ही पत्नी को है।''[13]

I UnHk%

1. गाँधी,1989; आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृ 5–10
2. गाँधी,1989; आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृ. 238–239
3. गाँधी,1989; आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृ. 238–239
4. वही, गाँधी ने भी इस दृष्टान्त का स्मरण किया, उनकी आँखे भर आती थीं। नारायण देसाई–ब्लिस इट वास टू बी यंग विद गाँधी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1968, पृ.72. राजमोहन गाँधी. 1995; द गुड बोटमेन–आ पोट्रेट ऑफ गाँधी, वाईकिग, नई दिल्ली, पृ.182, गाँधी ने जिस संवदेना के साथ इस घटना का वर्णन किया है,उससे स्पष्ट है कि उनके मन में

अपने व्यवहार के लिए अपराधबोध और पश्चाताप था। स्पष्ट है कि आत्मकथा में एक और तथाकथित निकृष्ट कार्य को करने का गाँधी का संकल्प दीख पड़ता है, तो दूसरी ओर कस्तूरबा के प्रति उनके व्यवहार में अन्याय की झलक मिलती है।

5. वही, पृ. 190
6. वही, पृ. 190
7. वही, पृ. 190
8 वही, पृ. 191–192
9. वही, पृ159
10. वही, पृ.159–160, राजमोहन गाँधी, 1995; द गुड बोटमेन–अ पोट्रेट ऑफ गाँधी, वाईकिग नई दिल्ली, पृ.179
11. वही, पृ. 272
12. वही, पृ. 8–7
13. वही, पृ. 20

****

प्रकाशित पुस्तकें :

काशी में हिन्दू विधवायें
सामाजिक न्याय : समस्या एवं समाधान
कामकाजी महिलाएँ : समस्याएँ एवं समाधान
विश्व के प्रमुख धर्म
प्रमुख समकालीन दार्शनिक
लिंग भेद एवं सामाजिक परिवर्तन

SARDI

Published by :
South Asia Research & Development Institute
B-28/7C, Manas Mandir, Durgakund
Varanasi 221005, U.P. (INDIA)
Email : sardi.vns@gmail.com,   Mob. 09453025847

SBN 978-81-932391-2-4

₹ : 350

RAJ GRAPHICS # 91 9415 94 2611